'मर्यादा' में प्रतिबिम्बित सामाजिक-राजनीतिक चेतना

एम० फिल उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध

शोध निर्देशक
डॉ० पुरूषोत्तम अग्रवाल

शोधार्थी
सुनन्दा पाराशर

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली- 110067

1995

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110067

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान

दिनांक
12-7-95

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कु. सुनन्दा पराशर द्वारा प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध "मर्यादा में प्रतिबिम्बित सामाजिक - राजनैतिक चेतना" में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा किसी अन्य विश्वविद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है ।

यह लघु शोध प्रबन्ध कु. सुनन्दा पराशर की मौलिक कृति है ।

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110 067

डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल
निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली- 110 067

1995

अनुक्रम

प्राक्कथन		......	क - ग
पहला अध्याय	:	नवविकसित शिक्षित समुदाय की सांस्कृतिक समस्याएं	1 - 30
दूसरा अध्याय	:	मर्यादा में प्रतिबिम्बित सामाजिक चेतना (विशेष संदर्भ स्त्री के अधिकार)	31 - 59
तीसरा अध्याय	:	"मर्यादा" के सम्पादकीय सरोकार और राजनैतिक निहितार्थ	60 - 94
चौथा अध्याय	:	ज्ञान राशि का संचित कोश और "मर्यादा"	95 - 120
उपसंहार		.....	121 - 124
मर्यादा में प्रकाशित कुछ प्रमुख लेखों की सूची			125 - 127
आधार ग्रन्थ सूची		.....	128 - 130

प्राक्कथन

साहित्य समाज के आगे चलने वाली मशाल है । 1936 में प्रगतिशील आंदोलन में दिये गये प्रेमचंद के इस नारे को अन्य साहित्यकारों ने भी एक मत से स्वीकारा । लेकिन इससे बहुत पहले पत्रकारिता के क्षेत्र ने इस सत्य को स्वीकारने के साथ-साथ उसे आत्मसात भी कर लिया था । हम स्नातक या स्नातकोत्तर तक जो साहित्य पढ़ते हैं उसमें आधुनिक गद्य साहित्य की बाल्यावस्था का जिक्र भर होता है या फिर उसका वर्णन जो उच्चकोटि का है और प्रसिद्धि पा गया है । चूँकि साहित्य खासतौर पर पत्रकारिता का स्वरूप, उसका चरित्र, मूल (प्राइमरी रिसोर्सेज) क्या था यह नहीं के बराबर पढ़ने को मिलता है और इसी जिज्ञासा ने मुझे इस विषय की ओर प्रेरित किया ।

आधुनिक गद्य का मूल विकास पत्रकारिता के माध्यम से ही हुआ है इसी खोज में दृष्टि "मर्यादा" पर टिकी- पता नहीं था एक ऐसे समुद्र में प्रवेश कर रही हूँ जिसमें ज्ञान के भंडार के अथाह सीपी बहुमूल्य पत्थर हैं जिनके बारे में मुझे स्नातकोत्तर तक पता नहीं था, बिना अतिशयोक्ति के "मर्यादा" सही अर्थों में ज्ञान विज्ञान राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रमों की अमूल्य निधि से भरी है जिसमें से मैं बहुत कम चुन पायी हूँ । सब कुछ ले लेने के बावरेपन में सम्भव है बहुत से महत्वपूर्ण विषय छूट गये हों इस कमी को आगे पूरी करने की कोशिश करूँगी ।

इस लघु शोध प्रबन्ध का विषय है - " मर्यादा" में प्रतिबिम्बित सामाजिक राजनीतिक चेतना" इसको मैंने चार अध्यायों में विभक्त किया है -

मर्यादा का समय नवम्बर सन् 1910 से आरम्भ होकर सन् 1923 में खत्म होता है "मर्यादा" सचित्र मासिक पत्रिका थी ।

प्रथम अध्याय- "नव विकसित शिक्षित समुदाय की सांस्कृतिक समस्याएं" में इस तथ्य की पड़ताल की गई है कि भारतीय नव शिक्षित समुदाय किस तरह पुरानी परम्पराओं से टकराते हुए भी पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकार रहा था उस टकराने में उसकी क्या सांस्कृतिक समस्याएं थी उसकी कमजोरियों और खूबियों को आँकने की कोशिश की गयी है अपनी अस्मिता की पहचान और उस आधार पर दूसरे समुदाय के प्रति उसका नकार यह अध्ययन का विषय है । "मर्यादा" सुलझे हुए विचारों वालें लेखकों और स्वतंत्रता सेनानी रही हस्तियों के सम्पादकत्त्व में निकली - "मर्यादा" में प्रतिबिम्बित सामाजिक चेतना- (विशेष संदर्भ स्त्री के अधिकार) मेरा दूसरा अध्याय है इसमें स्त्रियों के अधिकारों शिक्षा और समाज में स्त्रियों को लेकर जो चेतना है वह मैंने इस अध्याय में दिखाने की पूरी कोशिश की है "मर्यादा" का स्त्री विशेषांक निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण है जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है - क्योंकि उसमें स्त्रियों और उसकी स्थितियों को लेकर विचारोत्तेजक लेख छपे हैं । तीसरा अध्याय - "मर्यादा के सम्पादकीयसरोकार और राजनैतिक निहितार्थ । "मर्यादा"के दो मुख्य सम्पादक और दो अतिथि सम्पादक रहे - राजनीतिक विषयों पर छपे लेखों के निहितार्थ और उसकी पक्षधरता को रेखांकित करना इस अध्याय का मुख्य लक्ष्य है -

चौथा और अंतिम अध्याय है -ज्ञानराशिका संचित कोश और मर्यादा ।

मर्यादा में हर विषय पर लेख छपते थे प्रेमचंद की कहानियाँ, गुप्त, पंत आदि की कविताएं सेवासदन की आलोचना से लेकर यूरोप की वैज्ञानिक प्रगति की जानकारी वहाँ होने वाली क्रांति विषयक लेख छापना और उसके माध्यम से पाठकों में चेतना लाना मर्यादा की नीति में से एक था । मैंने अपने गुरुवर पुरुषोत्तम अग्रवाल के निर्देशन में अपना यह लघुशोध प्रबन्ध पूरा किया इसका मुझे संतोष ही नहीं गर्व है । किसी विषय का ढंग से समझ में न आना या कई बार मूर्खतापूर्ण किसी विषय को ले लेना मेरी इन नादानियों को सहजता से लेकर विस्तार पूर्वक समझाना कि किस विषय को किस ढंग से लेना चाहिए यह धैर्य मेरे गुरू में ही हो सकता है ।

मारवाड़ी पुस्तकालय {चाँदनी चौक} दिल्ली के पुस्तकालय विभाग के प्रति भी मैं आभार प्रकट करना चाहूँगी जहाँ से मुझे मर्यादा के अंक उपलब्ध हुए ।

अंत में कुछ शब्द प्रज्ञा पाठक के लिए जिनकी सहायता के बिना मैं नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय {वाराणसी} से अपनी शोध की सामग्री में शायद ही जुटा पाती उनको और उनके परिवार के स्नेहशील व्यवहार के लिए मैं उनकी आभारी हूँ । और एक अनन्त धन्यवाद अपने मम्मी, डैडी और दीदी, भैया, भाभी को जिनका प्यार और स्नेहशील व्यवहार मुझे हमेशा और अच्छा करने की प्रेरणा देता है । टिम्सी, घनिष्ठा, लवी, हर्षुल और तन्मय को बहुत से प्यार और शुभकामनाओं के साथ ।

सुनन्दा पाराशर

अध्याय - 1

" नवविकसित शिक्षित समुदाय की सांस्कृतिक समस्यायें "

" विचारों से कायल करना कविता का काम है भी नहीं घायल वह भले ही कर दे ।" आधुनिक काल तक आते-आते साहित्यकारों ने इस तथ्य को भली-भाँति समझ लिया था इसीलिए गद्य ने जीवन संग्राम की भाषा का रूप धारण कर लिया - यह रूप और पैना होता है अंग्रेजों की गुलामी और प्रताड़ना से ।

भारत में 1857 तक अंग्रेज पूरी तरह से अपने बाजार का विस्तार कर चुके थे, इसके बाद उन्होंने शिद्दत के साथ अपने धर्म की जड़ें फैलाने की आवश्यकता महसूस की । साथ ही भारत में से ही अपने विचारों के समर्थक पैदा करने के उद्देश्य से शिक्षा का व्यापक प्रसार आरम्भ किया । इस योजना के तहत उन्हें दो बातों की आवश्यकता थी, एक तो अंग्रेजी शिक्षा देना और दूसरे जिस वर्ग को वह शिक्षा दे रहे हैं उन्हें उनके अंधविश्वासों के कूप से बाहर निकालना उनके इस प्रयास ने उनकी कल्पना से कहीं अधिक काम किया ।

भारतीयों ने पहली बार गहराई और आत्मविश्वास के साथ यह महसूस किया कि वह भी एक पूर्ण संवेदनशील और विचारशील मनुष्य हैं इस नयी विचार धारा ने भारत में वही काम किया जो यूरोप में एनलाईटमेंट ने किया - पुरानी परम्पराओं के चरमराने और नई मान्यताओं के जन्म लेने और उन्हें समर्थन मिलने की प्रक्रिया को हम नवजागरण के नाम से जानते हैं ।

उन्नीसवी सदी तक भारतीय समाज ही युगीन अर्न्तविरोधों का संश्लिष्ट काल था यह अपनी पहचान बनाने की छटपटाहट का काल था यह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है कि राजनीतिक मुक्ति का मार्ग अवरुद्ध पाकर नव-

जागरण उन्नायक हाथ पर हाथ धर कर नहीं बैठ गये उन्होंने स्वत्व रक्षा के अन्य मोर्चों पर संघर्ष जारी रखा और यह संघर्ष था - सांस्कृतिक मोर्चे का ।

भारत में नवजागरण अपने सम्पूर्ण विकास को लेकर चलता है नव-शिक्षित वर्ग ने जिस वातावरण में अपने को शिक्षित किया वह अंग्रेजी संस्कृतिका वातावरण था वह अपने विचारों में परिवर्तन ला सकते थे पर वह यह जानते थे कि उनकी अस्मिता की सुरक्षा अपने संस्कारों में है इसी कारण अस्मिता की सुरक्षा को उन्होंने धर्म से जोड़ लिया । उनके इस धार्मिक सुरक्षा घेरे पर वार करने वाले दो प्रतिपक्षी थे मुस्लिम और अंग्रेज - पहला प्रतिपक्षी अब प्रति-द्वंदी बन चुका था दो में से एक को बुरा कह कर एक तो ¦अंग्रेज¦ प्रतिपक्ष के सामने अपनी उसके प्रति विश्वसनीयता प्रकट करनी थी कि आपने हमें इनके शासन से मुक्त कराया साथ ही यह की आप हमारे धर्म में दखल दिये बिना शासन करें । लेकिन अंग्रेजों के पहले किसी शासक ने वर्णाश्रम ढाँचे पर चोट नहीं की थी सर्वप्रथम अंग्रेजों ने उस ढाँचे को तोड़ने का प्रयत्न किया ।

अनजाने में ही सही हालांकि यह प्रयत्न सायास नहीं था यही वजह है कि भारतेन्दु से लेकर गुप्त जी और उनके साथ ही अनेक लेखकों, कवियों को अस्मिता तथा स्वत्व रक्षा का प्रश्न परेशान करने लगा यही कारण था कि 6¦ उपनिवेशीकरण से पहले के भारत में भद्रलोक से जुड़े कवि " हम कौन थे " सरीखी पंक्तियाँ नहीं लिखते थे क्योंकि सामाजिक, राजनीतिक सत्ता से वंचित रहने का दुर्भाग्य उनके हिस्से नहीं आया था । व्यक्ति के रूप में कोई भद्र-लोकीय चाहे गरीब और निर्बल हो लेकिन सांस्कृतिक वर्चस्व उसी के समाज

का था । उसके आत्मबोध में वह स्वतन्त्र सम्मानीय और श्रेष्ठ था ..... अछूतहास्या-स्पद, पूर्व जन्म का पापी और जात कमीना नहीं किसी वजह से किसी खासवक्तपर हासिल भले न हो लेकिन वर्चस्व और सत्ता की दुनिया में उसकी जगह सुरक्षित अवश्य थी ।..... उपनिवेशीकरण ने भद्रलोक के सामने कुछ-कुछ वैसे अनुभव का स्वाद पाने का अवसर पेश किया जैसा अनुभव " नीच" कमीन जात " लोग सदियों से झेल रहे थे सामाजिक सत्ता और राजनीतिक सत्ता के बीच एक फाँक पैदा हो गयी " और इस फाँक के कारण उसका अस्तित्व राजसत्ता की निगाह में कुछ-कुछ हास्यास्पद होने के साथ- साथ दोयम दर्जे के व्यक्ति का था यह चोट गहरी थी क्योंकि यह घृणा उनके जन्म की जातिगत सच्चाई पर प्रश्न नहीं उठा रही थी वहाँ उसके सम्पूर्ण अस्तित्व के लिए नकार था । उसकी सोच, उसकी मर्यादा जातिगत उच्चता का कोई अस्तित्व नहीं था । यहाँ हिन्दू अस्मिता के संकट पर विचार है जो यूरोप के उन्ही मूल्यों के हाथों संकटग्रस्त है जिन्हें उस समाज पर थोपा गया था जिसके पास उन्हें स्वीकारने का या नकारने का कोई भी विकल्प नहीं था । जो समाज - राजनीति और सांस्कृतिक वर्चस्व का आदी था उसे ही पराधीनता के साथ अपने लिए तिरस्कार की दृष्टि का कड़ुवा घूँट पीना पड़ा इसलिए अस्तित्व की रक्षा की समस्या प्रमुख हो गयी ।" (1)

और इस अस्तित्व रक्षा की सुरक्षा को अतीत में खोजने लगे यह स्वर्णिम अतीत राजसत्ता की तिरस्कार भरी नजरों के उत्तर में ढाल के रूप में प्रयोग किया जाने लगा - ऐसा नहीं है कि मुस्लिम शासनकाल में हिन्दुओं को स्वर्णिम

---

1. संस्कृति वर्चस्व और प्रतिरोध, डा० पुरूषोत्तम अग्रवाल पृ० 16-17

अतीत की याद नहीं आती थी " रामचरितमानस " जैसी रचना उसी दर्द का परिणाम है लेकिन अब उन्नीसवीं सदी के अंत में और बीसवीं सदी के आरम्भ में इस लहर ने एक तरह से आन्दोलन का रूप ले लिया और 1911 अगस्त में गोखले जी " मर्यादा " में लिखते हैं " जब तक राज्य का अधिकार भली-भाँति चलाया जाय और धार्मिक और सामाजिक जीवन में विघ्न न पड़े तब तक कोई राज्य करे उन्हें जरा परवाह नहीं है ।"[1] स्वर्णिम अतीत जिसने शुभारम्भ होता है आर्य जाति के उत्कर्ष से और अंत होता है । गुप्तकाल की समाप्ति से और मुस्लिम आक्रमण से ।

" जिस समय हिन्दूवाद की पुनर्स्थापना हो रही थी उसी समय इसाई धर्म का प्रचार हो रहा था हिन्दूवादी चेतना मुस्लिम को अलगाकर अपरोक्षरूप में यह दर्शा रही थी कि हमें न मुस्लिम की आवश्यकता है न ईसाई धर्म की ।, क्योंकि यह तो जाहिर है कि उस समय के साहित्यकारों का 'हम' एक खास समाज और वर्ग हैं जिसमें समाज चार वर्णों में विभाजित था और सब सुखी सम्पन्न थे उनके समाज में यदि शूद्रों और नारियों को निम्न स्थान प्राप्त था तो यह उस समय की शासन व्यवस्था थी । ‖ भारतेन्दु महारानी विक्टोरिया के प्रति श्रद्धा रखते हुए घोषणा करते हैं नि:संदेह किसी समय में हिन्दुस्तान के लोग ऐसे राजभक्त थे जो कि राजा को साक्षात ईश्वर मानकर पूजते थे ।[2] आलोचना - पेज 46 अक्टूबर 86 - रमेश कुंतल मेघ ‖

1• अगस्त, 1911 मर्यादा " प्राच्य और पाश्चात्य"
2• संस्कृति वर्चस्व और प्रतिरोध, डा0 पुरुषोत्तम अग्रवाल पृ0 16-17

" इतिहास में पहली बार उन्नीसवीं सदी के नवजागरण के दौरान "हम" को पारम्परिक अस्मिताओं से विस्तृतकर राष्ट्र के आधुनिक अर्थ में परिभाषित किया गया "हम " का घोषित अर्थ बना हम सब भारतीय, जो स्वर्णिम अतीत के वारिस हैं जिसका वर्तमान तनावपूर्ण है और भविष्य उज्जवल भद्रलोक की सदिच्छा यही थी कि हम सब मिलकर राजनीतिक स्वाधीनता के लिए संघर्ष करें "[1]

हम कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी
आओ विचारें मिलकर ये समस्याएँ सभी
यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं
हम कौन थे इस ज्ञान का फिर भी अधूरा है नहीं ।।
संसार में कुछ फैला प्रकाश विकास है
इस जाति की ही ज्योति का उसमें प्रधामाभास है ।

इसी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए वह कहतें हैं हिन्दुओं के देवताओं की वंशावली नामक पुस्तक के रचियता कान्टजार्न्स-जेर्ना लिखते हैं --

1• आर्यावर्त केवल हिन्दू घर का घर नहीं है वरन वह संसार की सभ्यता आदि का भण्डार है ।

2• धीरे-धीरे पश्चिम के विद्वान इस बात को मानने लगे हैं कि प्राचीन भारत वर्ष खूब उन्नत अवस्था में था और इसी ने यूरोप में तरह-तरह की विधा कला और अन्य बहुत सी वस्तुओं का प्रचार किया था कुछ दिन हुए न्यूयार्क वासीडेलयार साहब का एक लेख " इण्डियन रिव्यू में निकला था उसमें आपने

सिद्ध किया कि पश्चिमी संसार को जिन बातों पर अभिमान है वे असल में भारतवर्ष से वहाँ गयी थी···· इनके सिवा मलमल, रेशम घोड़े····· का प्रचार भी दो रूप में हिन्दुस्तान के द्वारा हुआ था ·····। पर अब समय का फेर देखिये कि स्वयं भारतवासी इन विधाओं को सीखने के लिए योरोप जाते हैं ।"[1]

भारत-भारती असल में एक अतीत राग है जिसे हम गोरा के शब्दों में कहें " तो हम अच्छे हैं कि बुरे सभ्य हैं कि असभ्य इसके बारे में किसी को कोई जबाब नहीं देना चाहते हम केवल सोलह आने यह अनुभव करना चाहते हैं कि हम हम हैं ।" लेकिन गुप्त जी के अतीत राग में हम कहीं से बुरे हैं ही नहीं, हम क्या थे ? दयानंद और मैथिली शरण गुप्त में ही नहीं वरन उस पूरे युग के समाज में विद्यमान है उस काल में स्थापित होने वाली संस्थाएं आर्य समाज (दयानन्द) तदीय समाज(भारतेन्दु) हिन्दू महासभाएं और गोरक्षा आन्दोलन आदि । "हम " और हमारी अस्मिता यदि इतनी ही गौरव-शाली है तो हमें उसे दूसरों के सामने रोने की जरूरत क्या है ? जरूरत है उस मानसिकता को समझने की-कि क्यों उस समय बार-बार यह कहने की जरूरत पड़ रही थी ।

नवविकसित शिक्षित समुदाय के सामने अपनी संस्कृति की पहचान को लेकर अजब सी बेचैनी है, चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी के लोक जागरण और 19वीं शताब्दी में अन्तर यह है कि वह आत्मपीड़ा से उपजा दर्द था अपने ही

1· भारत भारती - अतीतखण्ड - पृष्ठ संख्या ८।।
2· गोरा - रविन्द्र नाथ टैगोर पृ0 - 3।

समाज में अपनों से तिरस्कृत होने की पीड़ा थी " हम तो जात कमीना " कहने वाले कबीर को उन्हीं के धर्म के लोगों ने बाहर निकाल फेंका था तुलसी भी कवितावली लिखकर आत्मदर्द प्रस्तुत कर रहे थे मीरा, आंडाल का भक्ति भाव के साथ स्त्री होने का दर्द था तब निम्न जाति और शूद्र तिरस्कृत पात्र थे हालांकि न तो सूर न तुलसी निम्न जाति से थे लेकिन तुलसी की " कवितावली भी एक तरह का विद्रोह थी, एक तरह से कबीर से लेकर तुलसी तक सबमें एक विद्रोह की भावना विद्यमान है " मुख्य शत्रु जबकि अपने अंदर ही हो तो विरोध का लक्ष्य स्वभावत: वही होगा " ! और चूँकि यह जाति व्यवस्था धार्मिक विधिविधानों के रूप में ही समाज का नियमन करती रही है इसलिए दलित जातियों का असंतोष और आक्रोश भी प्राय: धर्म के रूप में ही प्रकट होता रहा है ।1

लेकिन इस तरह का जागरण अचानक रीतिकालीन आत्म समर्पण। में विलुप्त हो गया था लेकिन उन्नीसवीं सदी का नवजागरण कई मायनों में भिन्न था, नया था, यह उस आत्मपीड़ा से बाहरनिकल रहा था और यह समझ लिया गया था कि विपक्षी के सामने अपने को एक जुट दिखलाना है कि 'हम' भी हैं 'हम' हैं । यह "हम" हिन्दू का पर्याय है यह सही है --- यह तो सत्य है कि हिन्दू कभी मुस्लिम समुदाय को भारतवर्ष के अंग के रूप में स्वीकार नहीं पाये, शासक के रूप में उन्हें भले ही स्वीकारा हो पर एक अंग के रूप में

1· नामवर सिंह - दूसरी परम्परा की खोज, पृ0 -56

नहीं । दोनों ही यदि अपना अस्तित्व बरकरार रखना चाहेंगे तो टकराहट तो स्वभाविक रूप से होगी ही । यह माना कि उस समय हिन्दूवाद जोर पकड़ रहा था साहित्य में - विशेषतौर पर, पर हम उर्दू साहित्य में उर्दूवाद और मुस्लिमवाद के बारे में कितना जानते हैं और जानते भी हैं तो कितनी चर्चा करते हैं ? ।बहरहाल बहस का मुद्दा यह नहीं है यहाँ बहस है इस बात पर कि इस समय की सांस्कृतिक समस्या में हमारी अस्मिता का प्रश्न और उस अस्मिता में हिन्दू इतना क्यों जुड़ा है ।

1857 के दमन के बाद अंग्रेज " फूट डालो और राज करो " वाली राजनीति पर उतर आये थे उसी के तहत वे भारतवासियों खासतौर से हिन्दुओं को अहसास दिलाने लगे कि उनसे पहले हिन्दुस्तान असभ्य और कूपमंडुक था, मुस्लिम यहाँ आये तब वह बाहरी दुनिया से थोड़ा जुड़ा, इसी तर्क का प्रतिवाद अस्मिता की पहचान की खोज के फलस्वरूप उभर कर सामने आया । हिन्दूवाद, और उसका गुणगान ।" यह सिर्फ हीनता ग्रंथि नहीं है यहाँ प्रतिपक्षी को यह भी अहसास दिलाना है कि हम भी हैं कुछ, और यह " अतीत के गुणगान गौरवगान से सम्भव है इसी सन्दर्भ में मैथिलीशरण गुप्त को लें तो उनका गौरव अतीत राग की हद तक पहुँच जाता है जब वह " भारत भारती " में अपने को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने की कोशिश करते हैं तो यहाँ वह कहीं-कहीं अतिवाद के शिकार हो जाते हैं एक जगह वे रूस के नोटविच नामक यात्री के तिब्बत के हीमिस नामक मठ में ईसा का एक प्राचीन हस्तलिखित जीवन चरित का हवाला देते हैं ---" ईसाइयों का कथन है कि ईसा ईश्वर का पुत्र था परन्तु इस

जीवनी से मालूम हुआ है कि वह इसराईल में पैदा हुआ था उसके माँ-बाप गरीब थे ..... माँ बाप से रूठ कर वह घर से भाग निकला और हिन्दुस्तान आया - उसने पालि भाषा सीखी बुद्ध बौद्ध हो गया पर अपने देश को लौटकर उसने अपना धर्म चलाना चाहा, इस बखेड़े में उसे फाँसी हो गयी । इससे मालूम होता है कि अन्यांय मतो के समान ईसाई धर्म भी भारतवर्ष की सामग्री से ही तैयार हुआ है ।"

दूसरा उदाहरण वे मैक्समूलर का देते हैं ""मैक्समूलर ने अपने व्याख्यान में एक बार कहा था कि यदि कोई मुझसे यह पूछे कि वह देश कौन और कहाँ है जहाँ पर मनुष्यों ने इतनी उन्नति की है कि वह उत्मोत्म गुणों की वृद्धि कर सका है । और जहाँ मानव सम्बंधी बड़ी-बड़ी गूढ़ बातों पर विचार किया गया हो और जहाँ उनके हल करने वाले पैदा हुए हो तो मैं उत्तर दूँगा कि वह देश भारतवर्ष है । "

{।} -- हिन्दू लोग विदेशियों को भी गुलाम नहीं बनाते, स्वदेशियों को तो भला वे क्यों बनाने लगे । {मेगास्थनीज}

इन उदाहरणों से दो बात स्पष्ट होती है एक तो यह कि गुप्त प्रतिद्वंदी को जबाब उसी भावना के तहत दे रहे हैं जिस भावना के तहत वह भारतवासियों को जंगली ठहरा रहा है इसका करारा जबाब है कि तुम्हारे ईसा भी हमारे देश की उपज हैं, दोनो ही में तर्क गायब है ।

भारत भारती - पृ0 31

भारत भारती - पृ 31, 18

भारत की महानता सिद्ध करने के लिए वह यहाँ बाण भट्ट या कालिदास, तुलसी आदि का उदाहरण नहीं दे रहे हैं मैक्समूलर का उदाहरण दे रहे हैं यहाँ यह मानसिकता भी प्रदर्शित होती है कि आप ही के लोग हमारी विद्वता के कायल रहे हैं ।

गुप्तजी की " भारत भारती " का अंश " मर्यादा " के पहले अंक में पूर्व दर्शन के नाम से छपा था और फरवरी 1915 में " भारत भारती " की समालोचना । उस समय में अस्मिता बोध या अस्मिता की समस्या जैसे शब्द प्रचलन में नहीं थे, लेकिन उदय भट्ट ने उस समय जो आलोचना लिखी वह कम महत्वपूर्ण नहीं है - " भारत-भारती में उसी कोटि के विचार है जिस कोटि के साधारणत: बातचीत में नित्य प्रति आते हैं सिद्वान्त वाक्यों के सूखे कथन में भावों की उच्चता नहीं पायी जाती --" अपने शिक्षित भाईयों का हित करो " सबसे प्रथम कर्तव्य है शिक्षा आदि वाक्य कह कर ही कोई मनुष्य उच्च भाव प्रकट करने वाला नहीं कहा जा सकता है । अच्छा विषय हाथ में लेकर ही कोई उस पर अच्छे विचार नहीं प्रकट कर सकता ।"[1] इसमें प्रकट आलोचना में समकालीनों की भाँति चिंता भले ही न हो पर उस समय श्रीयुत उद्‌दट भाषा व्याकरण के दोष के साथ शब्दा डंबर विचारों की साधारणता के आधार पर " भारत भारती " की आलोचना करते हैं । लेकिन गुप्त जी की कविता में व्यक्त राष्ट्रीय चेतना की जाँच हमारे समकालीन आत्मा वेषण के लिए अत्यंत प्रासंगिक है " परम्परा में से सुविधाजनक को ले लेना और असुविधाजनक से

1• "मर्यादा" - उद्‌दट भट्ट

कतरा जाना हमारी प्रगतिशील आलोचना की दु:खद सीमा रही है ।"[1]

लेकिन यह भी एक दु:खद सीमा है कि सुविधाजनक को हीनता ग्रंथि कह कर दर किनार कर दिया जाय । उस समय गुप्त जी की " भारत भारती" ही नहीं अनेक लेखक हिन्दूवाद पर जोर दे रहे थे प्रश्न था उर्दू बनाम हिन्दी के झगड़े में हिन्दी को बचाना, जब एक बार फिर से अंग्रेज मुस्लिम और हिन्दू-वाद फैला रहे थे तो उसमें अपने अस्तित्व को बचायें एवं बरकरार रखने की चिंता और उस संकट को हम 80/90 वर्ष बाद उसी तरह समझ पायें यह मुश्किल है ।

"मर्यादा" उस समय {1910-1923} की अंतर्राष्ट्रीय लेखो और विषयों पर चर्चा करने वाली प्रमुख पत्रिका है उसमें जापान से लेकर इंग्लैंड अमेरिका की प्रगति पर लेख हैं - औरंगजेब, शाहजहां" मुहम्मद" पर लेख हैं प्रेस एक्ट बिल - मुस्लिम लीग, सिविल सर्विस आदि पर कई विचारोत्तेजक लेख हैं उस सबके बीच सब सही है पर हिन्दी को लेकर एक चिंता बराबर दिखती है --- उदाहरण - हिन्दू मंदिर " सुना जाता है कि भेर का हिन्दू मंदिर ढा दिया गया हिन्दुओं का सब कहना सुनना और विनती करना व्यर्थ हुआ कहा जाता है कि डिप्टी कमिश्नर और सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस की मौजूदगी में यह काम हुआ ••• पुलिस •••• के कारण हिन्दू मंदिर में आ जा न सके और इस कारण वे अंतिम बार भी मंदिर को वंदना न कर सके•••••• वहीं के स्कूल के मुसलमान मास्टर ने मंदिर के बड़े फाटक पर मूर्ति को तोड़ा•••

1• डा0 पुरुषोत्तम अग्रवाल - आलोचना, पृ0 126

वट वृक्ष की शाखायें काटी गयी..... ताजियों के निकलने में बाधा होती थी ..... वहाँ के जिला स्कूल में हिन्दू और मुसलमान सबको कुरान पढ़ाया जाता है.. .. गवर्मेन्ट के राज्य में ऐसी घटनाओं का होना गवर्मेन्ट के लिए प्रशंसा की बात नहीं है।[1]

हिन्दी का अनादर -- बनारस के नये राज्य में सरकारी जगह निकलती है। सुना जाता है कि अंग्रेजी और उर्दू में निकलता है। मालूम नहीं हिन्दी के स्थान पर वहाँ उर्दू को कैसे स्थान मिला किन्तु यदि उर्दू में निकलना आवश्यक ही है तो भी गजट का अनुवाद हिन्दी में अवश्य छपना चाहिये। एक हिन्दू राज्य में हिन्दी का ऐसा अनादर और विशेषत: या संस्कृत विद्यालय के केन्द्र में उसकी सबसे बड़ी और सब से योग्य कन्या का ऐसा अनादर हृदय को विदीर्ण करता है। हम आशा करते हैं कि श्रीमान काशी नरेश काशी के आसपास तो हिन्दी को अपने मान करने में सहायता देंगे। "[2]

यह दोनों ही उदाहरण " मर्यादा " के सम्पादकीय में लिखे गये हैं। " हिन्दी की हार - सन 1911 ई. की मर्दुमशुमारी की जो रिपोर्ट छपी है उसमें हिन्दी उर्दू के विषय में एक अध्याय है उस अध्याय में कहीं गई बातों की समालोचना स्थानीय दैनिक "लीडर " में प्रकाशित हुई जिसमें यह दिखाया गया था कि हिन्दी दिनों दिन पीछे रहती जाती है।"[3]

----

1. सम्पादकीय - मर्यादा- मई जून सन् 1911
2. वही
3. मर्यादा - मार्च 1913

नवम्बर 1918 शालीग्राम (एम.एम.सी) का एक लेख " हिन्दू और हिन्दी " नाम से लेख लिखा इस तरह के लेख बराबर दिखते हैं । अनेक त्योहारों दशहरा, तीज ,आदि पर लेखों में बराबर एक चिंता दिखती है।

बाल कृष्ण भट्ट जो उस समय " हिन्दी प्रदीप " के सम्पादक थे उन्होंने एक लेख लिखा था " जुदी-जुदी भाषाओं के जुदे-जुदे ढंग "--" प्रत्येक भाषा का काव्य भी इसी के अनुसार एक निराला ढंग लेता गया - उन देशा का भाषाओं की कविता वहां के रहने वालों के हृदय भाव उनके मन की रुकावट या रुचि का बहुत अच्छा निदर्शन है जैसा फारसी और उर्दू के काव्य में आशिक मा शूकों के नाज नखरे और हूर और गिलमानो के झगड़े भरे हैं .... भारत भूमि में बहुत सी सामाजिक प्रचलित बुराईयां इन्हीं लोगों के पदार्पण का परिणाम है पर लोक भीरू धर्म के लिए अपना सर्वस्व खोये हुए भोंदू दास हिन्दुओं को शांति रस जैसा भाता है वैसा दूसरा नहीं । "

फारसी ऐसी अपवित्र पर मधुर भाषाओं भी मौलाना रूम ऐसी दो एक पुस्तक है पर उर्दू निगोडी में तो सो भी नहीं है

झांकते हैं तो दुपट्टा तान कर
शरबते दीदार देंगे छानकर ।
झांकते थे वा हमें जिस राणने दीवार से
वाय किस्मत हो उसी रोजन में घर जंबूर का ।

---

1. मर्यादा - नवम्बर 1910 पृ0 13,14

इत्यादि इसमें क्या कविता के गुण या कवि का मनोवेग निकला " इत्यादि । कवियो के जुदे-जुदे ढंग यहां पर हमने कुछ दिखलाये हैं अधिक फिर कभी ।"[1]

यहाँ बाल कृष्ण भट्ट जी लेख के लिए सुविधाजनक उदाहरण को लेकर हिन्दी की दुर्दशा के लिए बड़ी सफाई से उर्दू को दोषी करार देते हैं । पर वह यह भूल रहे हैं कि मीर, गालिब आदि भी उसी उर्दू की देन है उनकी शायरी, और यह सब फारसी और उर्दू निगोड़ी के ही कवि हैं, भारत-भारती में तो यह सिर्फ स्वर्णिम अतीत की याद है जिसमें वो स्वर्णिम अतीत को याद करते हैं वर्तमान में वे ब्राहमणों को भी फटकारते हैं मुसलमानों को भी --

बीती अनेक शताब्दियाँ जिस देश में रहते तुम्हें
क्या लाज आवेगी उसे अपना वतन कहते तुम्हें ।
तुम लोग समझो भारत को अरब से कम नहीं । .....[1]
हिन्दू तथा तुम सब चढ़े हो एक नौका पर यहाँ
जो एक का होगा अहित तो दूसरे का हित कहाँ ....।[2]

ब्राह्मणों को भी वे कहते हैं ----

जो कामिनी कांचन न छूटा फिर विराग कहाँ ? .....
अब आप उनकी दक्षिणा पहले नियत कर दीजिए
फिर निन्द्य से भी निन्द्य उनसे काम करवा लिजिए ।[3]

---

1. मर्यादा - 1910 नवम्बर
2. भारत भारती -94
3. भारत भारती - 118 , 161

इस तरह की मानसिकता जो उस युग में बह रही थी शिक्षित समुदाय के सामने यह समस्या थी कि हमें --" ब्रिटिश शासन की कृपा ही कि हम कुछ जग गये ।

स्वाधीन है हम सभी कुछ-कुछ लगे हैं जानने
निज देश भारतवर्ष को हम फिर लगे हैं मानने ।।

इस समय नवविकसित शिक्षित वर्ग के मन में अपनी हिन्दूवादी भावना को लेकर कोई हीन ग्रंथि नहीं है वह उसे निःसंकोच स्वीकारती है कि निज देश भारतवर्ष को हम फिर लगे हैं मानने अपने ही देश में सदियों से विदेशियों के शासन में रहकर अपनी देश भक्ति की और अपने ही देश में पराया महसूस करने वाली भावना से निकल कर देश को अपना मानने लगे हैं । इसी में सम्पादकी टिप्पणियां (मर्यादा) में कृष्णाकांत जी लिखते हैं --- यह मत कहो कि अंग्रेज गैर हैं ..... वे उन मुसलमानों से -- देश को आर्थिक दृष्टि से अच्छे नहीं जो अत्याचारी --- नहीं अत्याचारी के बाबा होने पर भी देश में घुस जाते थे और वे इस देश की उन्नति या अवनति वैभव सम्पत्ति और नाश का एक सूत्र बँध जाता था । अब यह कहना कि काले गोरो में भेद किया जाता है उनके स्वार्थ परस्पर भिन्न हैं भीषण पाप है।"[1] यहाँ दुःख अंग्रेजो द्वारा भेदभाव का जो कानून व्यवस्था और विदेशों में विश्वविद्यालयों में भारतीयों के प्रवेश पर है । एक तरह से वो भी मुसलमानों के समान अत्याचारी के बाबा हैं ।

1· मर्यादा - भाग 13 संख्या 5 पृ0

इस समय बीसवीं शताब्दी के पहले एवं दूसरे दशक तक आते-आते स्वाधीनता चेतना के लिए सोयी हुई भावनाएं धीरे-धीरे जागने लगी थीं इस समय मुख्य समस्या उभर कर सामने आ रही थी वो थी कि हिन्दू अस्तित्व को फिर से स्थापित करने की समस्या दूसरा अपने द्वारा संचालित राज्य — इने गिने 150 वर्षों से ही अंग्रेज भारतवर्ष में हैं संसार भर में किसी भी सजीव देश का भूतकाल इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना हमारे देश, कोई भी दूसरा देश इसके समान उत्तम भविष्य की आशा नहीं रखता है अपने भूतकाल का ज्ञान हमें अपना भविष्य सुधारने और बनाने में सहायता देता है आज जब हम तुच्छता के वायुमण्डल में श्वास ले रहे हैं, तब हमारा भूतकाल हमारे वास्तविक रूप को दिखाकर हमारा धैर्य बंधायेगा —" बिना जातीय अभिमान के कोई जाति न तो उन्नति कर सकती है न गौरव को पा सकती है यही भावना इस जातीय के गौरव और अभिमान-स्वर्णिम अतीत को बार - बार याद करने के पीछे है । बार-बार " हम कौन थे " इसे अलग-अलग रूप में लेखक एक ही समय में इस चीज को दोहरा रहे हैं । " [1]

इस जातीय गौरव को बार-बार दोहराने में यह भावना भी शामिल है कि हम जैसा स्वयं के बारे में सोचेंगे वैसे ही जो जायेंगे । " यदि हम सोचते रहे कि हमारा भारतवर्ष पहले प्रतापी प्रतिभाशाली और प्रभावपूर्ण था अब है और ऐसा ही पिछले गौरव से ज्यादा गौरवपूर्ण भविष्य में होगा - यदि हम अपने देश को भारत-भारत -माता और देश भक्ति को अपना धर्म समझकर इसकी अराधना करें तो इसके लिए सभी प्रकार से उचित उद्योग करें तो निश्चय यानि कि सफलता मिलेगी ।" [2]

1· कांग्रेस के कर्तव्य - भाग 13 संख्या 5 पृ0 120

2· चेतावनी 1911 पृ0 38

"मर्यादा" में श्री कृष्ण जोशी "चेतावनी" शीर्षक से एक लेख लिखते हैं जिसमें अपने संस्कृति का पूर्नमूल्यांकन हैं जिसमें वह कह रहे कि " हम क्या थे -क्या हो गये " जातीय पुनर्जीवन का एक मात्र उपाय है कि हम अपने बच्चों को शिक्षा दें साथ में उन्हें अच्छे नागरिक बनने की शिक्षा दें क्या हो सकते हैं, जापान से हम उदाहरण ले सकते हैं ।" यहाँ लेखक साहित्यकार बिना एक दूसरे का हवाला दिये बिना अपने जातीय पुनर्जीवन को लेकर चिन्तित हैं, लेकिन जाति की चिंता सिर्फ धार्मिक कारण से ही नहीं यहाँ जाति और राष्ट्र एक दूसरे का पर्याय हैं अत: राष्ट्र की उन्नति जाति की उन्नति है इस समय शिक्षित समुदाय की सांस्कृतिक समस्या राष्ट्र के साथ जाति का पुनरुत्थान है न कि जाति के राष्ट्र का । यहीं पहली बार हिन्दु आत्म चेतना शूद्रों के प्रति चिंतित दिखायी देते हैं जुलाई 1917 में "मर्यादा" में छपा लेख "अछूतो के प्रति किए गये कुव्यवहार का फल " -- " यह अछूतो के प्रति किए कुव्यवहार का फल है कि वे धीरे-धीरे ईसाई धर्म स्वीकार रहे हैं ।" तो - जो जाहिर है कि यह चिंता सिर्फ शूद्रों के प्रति न होकर उनके क्रिस्तानी धर्म स्वीकारने के कारण हैं -- पर है । ऐसे ही सही पर पहली बार शूद्रों के प्रति भी चिंता जागी । दूसरी और जोतिबा फुले अंग्रेजों के भेण्री हैं कि निम्न और असुरक्षित वर्गों को अंग्रेजराज में जरूर कुछ राहत मिली है, कानून सबके लिए समान था, इसलिए ऊँच-नीच अमीर-गरीब इत्यादि भेद तत्पत: कम हो गये धर्म के नाम पर या सत्ता के बल पर अब किसी की मनमानी नहीं चल सकती जोतिबा यह महसूस करते थे कि अंग्रेजी राज सभी जुल्मों से मुक्ति देने वाला राज है ।

अंग्रेजो के आने से पहले पुरोहित वर्ग के धर्म, राजनीति सम्बंधी कारणों से प्रजा पर अत्याचार होते थे उनसे अब निम्न वर्ग को मुक्ति मिल गयी थी सदियों के बाद यह वर्ग खुली हवा में सांस ले पा रहा था ऐसी परिस्थितियों में जोतिबा फुले का यह सोचना गलत नहीं था । इसलिए अछूतों को उन्होंने सलाह दी कि " अंग्रेजों को त्यागो मत ! उनके हमारे ऊपर महान उपकार हैं । " ये " महान उपकार " माने अंग्रेजों की निष्पक्षता ! वर्ण या जाति की दृष्टि में कोई अर्थ नहीं रखती थी " और इसी समानता को स्वीकार करते हुए निम्न वर्ग के अनेक लोगों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया लेकिन इस बारे में मैथिलीशरण गुप्त जी भारत-भारती में लिखते हैं जब मुख्य वर्ग द्विजातियों का हाल ऐसा है यहाँ ।

तब क्या कहें उस शूद्र कुल का हाल कैसा है यहाँ !
देखो जहाँ हाँ ! अब भयंकर तिमिर पूरित गर्त है
यह दीन देश अध:पतन का बन गया मानते हैं ।[1]

यहाँ शूद्रों के प्रति चेतना जागृत होती है पर दृष्टिकोण वही ब्राह्मणवादी है ---कहीं " देखो जहाँ हाँ अब भयंकर तिमिर पूरित गर्त" इसलिए है कि अब शूद्रों में अपने प्रति चेतना जागृत होने लगी थी शिक्षा प्राप्त करने और समाज में अधिकारों के लिए निम्न वर्ग संघर्षशील होने लगा था ।

जाति व्यवस्था जो भारतीय समाज सत्ता की धुरी थी उसमें से जब शूद्र बाहर निकलने की कोशिश करने लगे तो एक तरफ मुसलमान दूसरी तरफ

1• भारत भारती पृ0 162

संस्कृति को ठेस पहुँचाने की कोशिश करते अंग्रेज तो स्वाभाविक है कि खीझ तो होगी ही -- यहाँ एक प्रसंग का उल्लेख आवश्यक हो जाता है -- " जब गांधी जी ने रेमजे मेक डोनल्ड के " कम्यूनल एवार्ड " के खिलाफ अनशन आरम्भ किया तो नेहरू को बड़ी खीझ हुई खीझ की वजह नेहरू के शब्दों में " ऐसे गैर अहम सवाल को गांधी जी ने जीवन-मरण का प्रश्न बना लिया।" सवाल नेहरू की खीझ इस बात पर थी कि अछूतों के अलग मताधिकार सरीखे सवाल पर गांधी जी वह उर्जा खर्च कर रहे हैं जो असल में राष्ट्रीय स्वाधीनता के बृहत्तर और राजनीतिक सवाल से जुझने में खर्च होनी चाहिये ।" उस समय राजसत्ता ही मुख्य राजनीतिक समस्या थी अतः सारा ध्यान उसी पर होनी चाहिये ऐसी मामूली समस्याओं पर नहीं ।"[1]

ध्यान देने योग्य बात है यहाँ पर गांधी जी मताधिकार को लेकर लड़ (अनशन) रहे हैं लेकिन 1930 तक भी उनके मन में दलितों के मंदिर में प्रवेश को लेकर एक असमंजस्य है । 2 मार्च 1930 को गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आरम्भ किया उसी दिन अम्बेडकर ने हिन्दू निरंकुशता के खिलाफ आन्दोलन शुरू किया लेकिन इसका परिणाम हिंसा में हुआ । इस सत्याग्रह की व्यापक प्रक्रिया यह हुई कि पहली बार यह विदेशों में जानने को मिला कि भारत में करोड़ो ऐसे लोग हैं जो अपने ही देश में (त्याज्य हैं) अछूते हैं " इसका प्रतिकूल प्रभाव भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और उन संगठनों पर पड़ा जो स्वराज्य की लड़ाई लड़ रहे थे । महात्मा गांधी के लिए यह एक बड़ी चुनौती थी

---

1. संस्कृति वर्चस्व और प्रतिरोध - डा० पुरुषोत्तम अग्रवाल, पृ० 97-98

क्योंकि उस समय तक दलितों के मंदिर में प्रवेश के विरोधी थे । वह हिन्दू धर्म को उसके सनातन रूप में स्वीकार करते थे उनका कथन था - कि " यह कैसे सम्भव हो सकता है कि अन्त्याज्य ﴾ अछूत ﴿ सभी वर्तमान हिन्दू- मंदिरों में प्रवेश करने के अधिकारी हो ? जब तक जाति और आश्रम के कानून को हिन्दू धर्म में प्रमुख स्थान प्राप्त है, तब तक यह कहना कि प्रत्येक हिन्दू प्रत्येक मंदिर में प्रवेश कर सकता है, संभव नहीं है । "[1] ﴾ गांधी शिक्षण, भाग 2, ﴾ पृ0 132 ﴿

दलितो के साथ अस्पृष्यता का व्यवहार मानवाधिकार के उल्लंघन का प्रश्न था अत: पूरे विश्व में इस पर चर्चा हुई और डा0 अम्बेडकर के योगदान की प्रशंसा हुई हिन्दू व्यवहार की आलोचना थी, गांधी जी स्वयं दक्षिण अफ्रिका में रंग भेद के खिलाफ थे अत: भारत में वह और कांग्रेस जाति भेद के प्रश्न पर धर्म संकट में पड़ गये और राजनीतिक चातुर्य का उपयोग करते हुए मंदिर में दलितों के प्रवेश के समर्थक हो गये ।

समाज में अछूत उच्च वर्णों के गुलाम थे । बहुसंख्यक जनता अंधविश्वासी, रूढ़ि, परम्परा की गुलाम थी कुल मिलाकर गुलामी का दायरा बहुत बड़ा था और उस दायरे के भीतर और कई दायरे थे । लोक हित के लिए धर्म और शास्त्र दोनों की अंधता नकारना आवश्यक था, शूद्र और स्त्री को समाज में पूर्व स्वीकृति के लिए शास्त्रों एवं धर्म में लिखित अंधविश्वासों को छोड़ना आवश्यक है इस बात को अम्बेडकर जोतिबा फुले और अपनी तरह से गांधी जी ने भी

----

1. ﴾ हरिजन से दलित डॉ0 राजकिशोर ﴿ पृ0 68-69

महसूस किया " मर्यादा " के समय में भी नवशिक्षित वर्ग में यह चेतना जागृत होने लगी थी कि समाज के सम्पूर्ण विकास के लिए इन दोनों की स्थिति में सुधार आवश्यक है लेकिन यह चेतना काफी कम थी — या यह कह सकते हैं कि जोतिबा सरीखे सुधारक होने के बाद -- यह चेतना जागृत होनी शुरू हुई जिसमें स्त्री की बाह्य समाज में भागीदारी को लेकर ज्यादा थी शूद्रों पर उस समय भी उतनी तीव्रता से ध्यान नहीं दिया गया था — " मर्यादा " उस समय के जागरूक राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय विषयों के छापने वाली एवं उन पर बहस करने वाली प्रगतिशील पत्रिका थी जो कि 1910 से लेकर 1923 तक निकलती रही लेकिन उसमें एक जगह शूद्रों के खिलाफ धर्म को स्वीकारने को लेकर चिंता है जाति विघटन की । या फिर एक कहानी छपी है जो निसंदेह अच्छी है पर एक मात्र वही कहानी -- लेकिन वहीं दूसरी ओर 1914 में निकले स्त्री विशेषांक में —" हिन्दुओं की सामाजिक अवस्था नामक लेख निकला --- आज इसी छुत-छात के झगड़े में 6 करोड़ या भारतवर्ष की आबादी का पाँचवा भाग ऐसे मनुष्यों का है जिन्हें अछूत जातियों के नाम से पुकारा जाता है इनको हम पतित कहती हैं नहीं -नहीं हमने इन जातियों को केवल पतित नहीं बनाया है बल्कि इनके लिए हमने शिक्षा का द्वार सर्वदा के लिए बंद कर दिया है उनके साथ न तो सामाजिक प्रेम प्रकट किया जाता है न दस्तकारी के सम्बंध में उन्हें सहायता दी जाती है वह परस्पर मिल नहीं सकते...... सरकारी नौकरी का रास्ता हमने उनके लिए बंद करवा दिया है..... इस समय देश में राजनीतिक अधिकार प्राप्त होने लगे हैं जिन नियमों के मूलपर हम गवर्नमैन्ट से अपने अधिकार माँगती हैं उन्हीं सद्विचारों से प्रेरित

DISS
Y(P,152)=MAR:9(Y)
152N5

TH-5688

होकर हमें इन जातियों को सामाजिक न्याय की दृष्टि से देखना चाहिये ।"[1]

.... क्योंकि वे अपना धर्म त्यागकर मुसलमान या ईसाई हो जाते हैं हम अच्छा बर्ताव करने लग जाती हैं ।"[2] दूसरा लेख उमा देवी नेहरू ने लिखा । अछूत जातियों की दशा -- हमारी अछूत जातियों के साथ बर्ताव हमें नीचे गिराता है । पासी, भंगी, पारिया, पंचनामा इत्यादि उन सब बेकसूर जातियों के नाम हैं जो बिना किसी अपने कसूर के हजारों वर्ष से जुल्म सहती आ रही हैं ।"[3] यह एक सुखद आश्चर्य है कि उस समय गिनी चुनी पढ़ी लिखी महिलाओं में यह जागृति थी -- कहीं कृष्णाकांत मालवीय जी से लेकर कृष्ण जोशी जो जाति के पुनरुत्थान को लेकर चिंतित हैं वहीं शूद्रों के प्रति चिंता मात्र है कि वह क्रिश्चियन धर्म अपनाते जा रहे हैं " हे नीच जाति की प्रथा इसे तुम तोड़ो " (आकाशवाणी (लेखन --पं॰मग्न द्विवेदी गजपुरी बी॰एस भाग संख्या । पेज 19 (कहीं-कहीं इस तरह के वाक्य के अलावा गंभीरतापूर्वक उस पर चिंता नहीं । यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि उस स्त्री विशेषांक का सम्पादन रामेश्वरी देवी नेहरू ने किया था -- कृष्णाकांत मालवीय ने नहीं । इस तरह उस समय के शिक्षित वर्ग की सांस्कृतिक समस्याओं में प्रमुख था कि किस तरह मुस्लिम और ईसाई धर्म से अलग बचकर अपना ब्राह्मणत्व कायम रख सकें, तब उसी तरह फिर से सुशासन व्यवस्था फिर से आ जाय अंग्रेजों के ऋणी इसलिए कि उन्होंने मुगलशासन से पीछा छुड़ा दिया ।

ब्रिटिश सत्ता से सम्बंध, नवशिक्षित वर्ग की मुख्य समस्या यही थी --

---

1॰ मर्यादा - अक्टूबर 1979 संवत
2॰ (मर्यादा(हिन्दुओं की सामाजिक अवस्था - लेखिका उमादेवी ने, हंस, भाग 6 संख्या 4 पृ0 263
3॰ मर्यादा 1915 "अछूत जातियों की दशा " स्त्री दर्पण की सम्पादिका

ब्रिटिश सत्ता से नवशिक्षित वर्ग का सम्बंध आरम्भ में सहयोग पूर्ण था पर जैसे-जैसे इस वर्ग को अहसास होता गया कि वह अंग्रेजों के लिए एक समझदार नागरिक नहीं एक मोहरा भर है जिसे वह अपने जीत और शासन बनाए रखने के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं उनका धीरे-धीरे मोहभंग होना आरम्भ हो गया, परन्तु आरम्भ में उनका सहयोग पूर्ण व्यवहार राजभक्ति की हद तक जिसका रूप हमें उस समय के साहित्य में देखने को मिलता है । परन्तु 1857 को स्वतन्त्रता संग्राम अंग्रेजों के प्रति असहमति का आन्दोलन है लेकिन विद्रोह के दमन और उसके तुरन्तबाद अंग्रेजो ने जिस नीति को अपनाया उसके परिणाम स्वरूप हमें साहित्य में कहीं प्रत्यक्ष में उस संघर्ष की अनुभूति सुनाई देती हमें करीब साढ़े तीन दशक तक सुनाई नहीं देती - पर जब -" जेहि भय सर हिलाय न सकत कहुँ भारतवासी ।" तब समझदारी यही थी कि उसे साहित्यिक विधाओं के माध्यम से प्रकट करें " जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो" यह नारा उस समय की परिस्थितियों को परिलक्षित करता है --"अंधेर नगरी (भारतेन्दु) में केवल वर्तमान है वर्तमान को स्थापित करने के लिए नाट्य का रूपबंध भी वर्तमान का होना चाहिये । चूंकि इसके माध्यम से नाटककार अंग्रेजी उपनिवेशवाद के विरुद्ध जनता में नवजागरण पैदा करना चाहता था इसलिए उसने लोकप्रचलित नाट्यरूप का सहारा लिया ।"[1] यूरोप में जन्मी राष्ट्रीयता की विचारधारा से प्रभावित उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पढ़े लिखे भारतीयों प्रजा तक के साथ जुड़े राष्ट्रवाद का रूप समझ आने लगा था

---

1. हिन्दी नाटक - डा0 बच्चन सिंह, पृ0 38

भारतेन्दु के प्रेरणादायक व्यक्तित्व को हिन्दी में सर्वतोन्मुख उन्नति का सूत्रपात किया भाषा हमारी संस्कृति का प्रतीक है उसको मूल समस्या मानना चाहिये भारतेन्दु ने सहज भाव से इस प्रश्न को समझा था।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटेत न हिय को मूल ।

यहाँ भारतेन्दु ने निज भाषा शब्द का प्रयोग किया है जिससे आलोचकों को काफी परेशानी है कि आखिर निज भाषा शब्द से अभिप्राय क्या है? आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में ---"यहाँ उन्होंने निज भाषा शब्द का व्यवहार किया है मिली-जुली आमफहम - राष्ट्रभाषा आदि का नहीं प्रत्येक जाति की अपनी भाषा है और वह निज भाषा की उन्नति के साथ उन्नत होती है ।"[1]

दूसरी तरफ भारतेन्दु समग्र में हेमन्त शर्मा कहते हैं " बंगालियों के लिए बंगला मराठियों के लिए मराठी, पंजाबियों के लिए पंजाबी थी तो दूसरे के लिए दूसरी थी भाषा संदर्भ में उनका दिमाग बिल्कुल साफ था --

इसी संदर्भ में वह आगे कहते हैं सभी भाषा की उन्नति चाहते हुए वह उर्दू के कुछ खिलाफ लगते हैं इसके दो कारण - एक तो भाषाई सन्दर्भ में उनके परम विरोधी "राजशिव प्रसाद सितारे हिन्द" का उर्दू के प्रति लगाव उनका व्यक्तित्व विरोध उर्दू के दुराव का कारण बना। दूसरे उर्दू भाषी लोगों की साम्प्रदायिकता उन्हें उर्दू से दूर ले गयी थी ।"[2]

1•हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास -हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ0 212
2•भारतेन्दु समग्र - पृ0 संख्या 24

लेकिन यह दुराव निजभाषा को स्पष्ट कर देता है उर्दू में भारतेन्दु स्वयं रसा उपनाम से कविता करते थे कुरान का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया- जो स्वभाविक है बिना प्रेम के सम्भव नहीं है उनकी उर्दू रचनाओं में गम्भीरता पूर्ण रूप से विद्यमान है ।

"तेरी रहमत का उम्मीवार आया हूँ
सर ढाये कफन से शर्मसार आया हूँ
आने न दिया गुनह न पैदल,
ताबूत में काँधे पर सवार आया हूँ ।"[1]

उनको विरोध उर्दू से नहीं था बल्कि उर्दू भाषी लोगों की साम्प्रदायिकता से था --" मुसलमान भाईयों को उचित है कि इस हिन्दुस्तान में बस कर वेहिन्दुओं को नीचा समझना छोड़ दें .... घर में आग लगे तो जिठानीयों दयौ रानी का आपस में वह डाह छोड़कर आग बुझानी चाहिए जो बात हिन्दुओं को मयस्सर नहीं वह कर्म के प्रभाव से मुसलमानों को सहज रूप में प्राप्त है उनमें जाति नहीं, विलायत जाने में रोकटोक नहीं फिर भी बड़े अफसोस की बात है उन्होंने अपनी दशा सुधारी नहीं ।"[2]

भारतेन्दु और उनके युग का हिन्दी प्रेम और राजभक्ति प्रसिद्ध है लेकिन इसके लिए हमें उस समय की परिस्थितियों को समझना आवश्यक है पहली बात तो यह है कि रानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र से कुछ लोगों के मन में यह वास्तविक भ्रम पैदा हुआ था कि देश की दशा सुधर जायेगी ।

1• भारतेन्दु समग्र - सं0 हेमन्त शर्मा, पृ025
2• वही

उन्होंने सामान्य मुद्दों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाएँ जाहिर करने के लिए साहित्यिक विधाओं का भरपूर इस्तेमाल किया इसके दो फायदे थे पहला तो यह कि यह सामान्य पत्रिका की श्रेणी में आने से बच सकता था और ज्यादा प्रभावोत्पादक हो सकता था । पुन: इस तरह के प्रयोग प्रतिकूल सरकारी क्षेत्र की गिरफ्त में आने से बच सकता था ।

उन्नीसवीं शताब्दी का " स्वत्व निज भारत गहे " यही हमारी चर्चा का मुख्य विषय है । क्या है यह "निज" ? आखिर स्वत्व किसका ? — डा0 नामवर सिंह भारतीय नव जागरण की मूल समस्या मानते हैं "स्वत्व निज भारत गहे ।" को " यह स्वत्व वही है जिसे आजकल अस्मिता कहते हैं राजनीतिक स्वाधीनता इस स्वत्व प्राप्ति की पहली शर्त है । उपनिवेशवाद की छाया में भारतीय संस्कृति के लोप का खतरा पैदा हो गया था इसलिए अपनी संस्कृति का प्रश्न स्वत्व रक्षा का प्रश्न बन गया था ।"[1]

भारतेन्दु के व्यक्तित्व में बतौर रचनाकार और व्यक्ति भारतेन्दु में गहरी लकीर बीच में है और यह अस्मिता बोध इन दोनों के संघर्ष से उपजा बोध है । भारतेन्दु एक ओर जहाँ अपने नाटकों में कटाक्ष पर कटाक्ष करते चलते हैं अंग्रेजों पर, भारतीयों की आलस्यभरी मानसिकता पर चाहे वह हिन्दू हो या मुस्लिम, वहीं दूसरी ओर वह गहरे आस्थावान वैष्णव थे । भारतेन्दु के यह दोनों पहलू एकदम स्पष्ट हैं उनके किसी एक पहलू को छिपाना भारतेन्दु

---

1. आलोचना 86, पृ0 सं0 -3

के साथ अन्याय करना है । भारतेन्दु " वैष्णवता और भारतवर्ष " में जहाँ एक ओर वैष्णवता की महानता और सार्थकता सिद्ध करते हैं कि सब्जियों व्यक्ति आदि के नाम भी, रामाफल, सीताफल, श्रीफल, राम तोराई, मिठाईयों में श्रीभोग, गोविन्द बड़ी, मोहन भोग । व्यक्ति - हरिदास रामगोपाल, सीता । आदि से स्पष्ट है कि वैष्णवमत ही भारतवर्ष का मत है और वह भारतवर्ष की वह हड्डी लहू में मिल गया है ।" लेकिन इसी के अंत में वह कहते हैं कि कृस्तान, मुसलमान पारसी यही हाकिम हुए जाते हैं हम लोगों की दशा दिन-दिन हीन हुई जाती है जब पेटभर खाने को न मिलेगा तो धर्म कहाँ बाकी रहेगा ।"[1]

हालांकि हेमन्तशर्मा कहते हैं कि भारतेन्दु ने वैष्णवता की व्याख्या कूप मंडकता से बाहर निकल कर कि यह कहते हुए वह उपरोक्त बातों को नजर अंदाज करते हैं[2] । पर इसी के साथ यह सही है कि " वैष्णव धर्म को प्राकृत धर्म से जोड़कर भारतेन्दु ने पूरी वैष्णव अवधारणा को एक नया आयाम दिया। उसकी अनेक खिड़कियाँ खोली । ताजी हवा में वैष्णव धर्म ने साँस ली और एक ऐसी वैष्णवता तैयार हुई जो गाँधी को भी रास आयी ।[3] वैष्णव ,शैव ब्राह्मण, आर्य समाजी सब अलग-अलग पतली डोरी हो रहे हैं इसी से ऐश्वर्यरूपी मस्त हाथी उनसे नहीं बंधता ।

उन्नीसवीं सदी का भारतीय समाज ही युगीन अन्तर्विरोधों का संश्लिष्ट काल था यह अपनी पहचान बनाने की छटपटाहट का काल था

1• भारतेन्दु समग्र - पृ0 974
2• वही पृ0 28
3• वही

1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई और 1906 में मुस्लिम लीग की - 1888 में वायसराय ने घोषणा की कि --" कांग्रेस एक अत्यंत अल्पसंख्यक वर्ग की प्रतिनीति से अलग कुछ भी नहीं ।" लेकिन इस घोषणा के बाद भी यह एक सशक्त संगठन के रूप में उभरी परन्तु कांग्रेस की सौजन्य पूर्ण माँगों में राजभक्ति का पुट रहता था ।"[1] परन्तु धीरे-धीरे विश्वास टूटने के साथ विरोध ने जन्म लेना शुरू कर दिया । जुलाई सन् 1916 में "मर्यादा" में सम्पादकीय टिप्पणियाँ" नामक स्तम्भ में " नहीं चाहते" नाम से एक टिप्पणी निकली जिसमें कहा गया- कि ब्रिटिश राजनीतिक युद्ध के बाद पुन: साम्राज्य संगठन की चर्चा कर रहे हैं वे गोरी जातियों का एक साम्राज्य बनाना चाहते हैं । उसमें साम्राज्य सम्बंधी पार्लियामेंट बनी तो हमारे प्रतिनिधि उसमें रहे भी तो भी सिवाय सलाह देने के उसे कुछ करने का अधिकार न होगा .... भारतवासी इस प्रकार अपमानित होना कभी भी स्वीकार न करेंगे यह सबको विदित रहना चाहिये । इसीलिए भारत को स्वराज्य की आवश्यकता है । इसीलिए भारतवासियों को स्वराज्य के लिए आंदोलन करना चाहिये ।"[1] इसी में एक दूसरी टिप्पणी है "स्वतन्त्र अरब" नाम से यूरोपीय महाभारत का उद्देश्य स्वतन्त्रता का प्रचार है पोलैण्ड को रूस और जर्मनी ने स्वतन्त्रता प्रदान की । उसके बाद आयरलेण्ड को स्वतन्त्रता का वचन दिया अब खबर आयी कि हजाज के अरब निवासियों ने भी अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी ।

---

1. सुमित सरकार (आज का भारत) पृ0 18

.... देखें भारत के सम्बंध में यह युद्ध क्या फल देता है और इग्लैंड इसे कब होमरूल देता है । [1]

" जापान महिला महाविद्यालय " नामक एक लेख है जिसमें लेखक का नाम नहीं है पर यह भी मर्यादा - 1916 में निकला था -" जापान में तो ज्ञात होता है कि भिन्न-भिन्न मतावलम्बियों में विवाह भी हो जाते हैं.... यदि यह राष्ट्र को ढीला करने वाला कठिन धार्मिक बंधन टूट जाता तो बड़ा उत्तम होता जिस देश में रहने वाले धार्मिक विचार से आपस में लड़ा करते हैं व उनके सामाजिक जीवन रूपी सरोवर में धार्मिक बाधाएं भीत की तरह खड़ी होकर उन्हें आपस में मिलने नहीं देती तो वह देश किसी प्रकार से भी सुखी नहीं रह सकता -- यदि संसार में सभी जगह भिन्न-भिन्न मत वाले साथ-साथ एक ही समाज के अंगस्वरूप होकर रह सकते हैं तो भारत में ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं हो सकती । "..... क्या भारत को मुसलमान उन्हीं ऋषियों की सन्तान नहीं है जिनके हिन्दु हैं ? क्या भारत के मुसलमानों को गंगा या यमुना उसी प्रकार शीतल जल नहीं पिलाती जिस प्रकार हिन्दुओं को।.. क्या केवल इसी कारण से कि वे अरबी अक्षरों में लिखे हैं हम अपने चार शताब्दियों के साहित्य रत्न को फेंक देंगे ? यह सब कहने का मेरा अभिप्राय है कि मजहब एवं धर्म मनुष्य की निज सम्पत्ति है उसका सम्बंध केवल आत्मा और परमात्मा से है ।

----

1. मर्यादा - सम्पादकीय टिप्पणियां, जुलाई 1916 पृ0 46

2. वही पृ0 85-86

नवशिक्षित वर्ग आरम्भ में राजभक्ति और देशभक्ति की दुविधा में था - मर्यादा में भी आरम्भ में यह दुविधा देखने को मिलती है परन्तु धीरे-धीरे यह " जापान महाविद्यालय " नाम से लिखे गये लेख में विचार तक स्पष्ट होने लगती है इस समय तक शिक्षित वर्ग यह महसूस करने लगा था कि उसे धर्म के झगड़ों से निकलकर राजभक्ति का मार्ग त्याग कर देशभक्ति के मार्ग को अपनाना होगा जिसे "मर्यादा" में बखूबी मर्यादित रहकर अपनाया इनके लेखों में कहीं व्यर्थ की भावुकता देखने को नहीं मिलती - संतुलित विचार और स्पष्ट दो टूक बात " मर्यादा " की विशेषता थी ।

अध्याय - 2

"मर्यादा में प्रतिबिम्बित सामाजिक चेतना

(विशेष सन्दर्भ - स्त्री के अधिकार और शिक्षा)"

"रोम निवासी केटो अपने हर वक्तव्य को किसी भी सम्बन्ध में क्यों न हो सदा १कार्थेज मस्ट फाल ॥

॥ कह कर समाप्त किया करता था । हमने भी सोचा हर पत्र-पत्रिकाओं को उसमें कुछ ही विशेषता क्यों न हो स्त्री सम्बन्धित लेखों से सुज्जित किए बिना न रहेंगी ।" उमा-देवी नेहरू

इसी भावना को ध्यान में रख कर यह अध्याय लिखा गया है ।

"स्त्रियों का संस्कार मंत्रों से नहीं होतप यही शास्त्र की मर्यादा है । स्मृति तथा धर्मशास्त्र में और किसी मंत्र में भी इनका अधिकार नहीं है। इसलिए यह झूठ के समान अशुभ है ।"

"स्त्रियां न रूप की परीक्षा करती हैं न अवस्था विशेष पर ध्यान देती हैं, परन्तु सुरूप व कुरूप चाहे जैसे पुरुष को पाकर

उनके साथ संभोग करती है ।"

"शय्या, आसन, आभूषण, काम, लोभ, द्रोह, कुटिलता और निन्दित आचरण ये मनु ने स्त्रियों के लिए ही बनाए हैं ।"

इस सब के पश्चात मनु स्त्रियों को आदर भाव? देते हुए लिखते हैं --

"जहां स्त्रियों का आदर किया जाता है वहां देवता रमण करते हैं और जहां अनादर होता है वहां सब काम निष्फल हो जाते हैं ।[1]

"प्राचीन काल में स्त्रियों को केवल स्त्री होने के कारण सार्वजनिक सेवाओं से अलग नहीं रखी जाती थीं, किन्तु उनको योग्यता अनुसार सब काम दिये जाते थे और गांव की पंचायत में भी उनका चुनाव हो सकता था ।"[2]

अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों का जाल बिछाकर उसमें अज्ञानी लोगों को, शूद्रों को, स्त्रियों को फांसा यह साजिश उन लोगों की समझ में न आये इसलिए ज्ञान के रास्ते ही बंद कर

---

1. मनुस्मृति अध्याय 12वां श्लोक और 14वां श्लोक 16 अध्याय 3
2. ऐनी बेसेन्ट - मर्यादा {पत्रिका} स्त्री विशेषांक, पृ. सं.

दिए गये स्त्रियां धर्म ग्रंथ नहीं पढ़ सकती थी शूद्र उसे सुन नहीं सकते थे। समाज जितना अज्ञानी और अंधश्रद्ध रहेगा उतना ही ब्राह्मण का हित होगा यह जानकर आर्यभट्ट ब्राह्मणों ने पूरे समाज की नाकाबंदी कर दी ऐसा जोतिबा मानते थे।"

मनुस्मृति से लेकर ऐनी बेसेन्ट एवं जोतिबा फुले के वक्तव्य एक ही विषय को लेकर विभिन्न विचारों का संगम है।

प्राचीन काल से लेकर चली आ रही परम्पराओं और अंधविश्वासों को निभाने को अभिशप्त नारी के दुखों और उनके धीरे-धीरे जागृति की ओर अग्रसर होते कदमों से समाज में हलचल इस सब विषयों पर चर्चा और चिंता दोनों ही धर्मों को "मर्यादा" ने खूब निभाया है।

"मर्यादा" में स्त्रियों पर उस समय की समस्याओं को लेकर विस्तार से चर्चा हुई है। महिलाओं की सभाओं में व्यवहारिक भागीदारी से कतराना, वोट के अधिकार पर लम्बी बहस, शिक्षा और अनेक रूढ़ियों को लेकर चर्चा करते लेख इस सब को प्राथमिकता दी गई है। "मर्यादा" के दो विशेषांक निकले जिसमें दूसरा उपलब्ध नहीं है लेकिन एक विशेषांक और भिन्न-भिन्न समय में निकलने वाले लेखों से यह स्पष्ट है कि स्त्रियों

पर चर्चा को काफी गम्भीरता से लिया जाने लगा था जिससे घबराकर अनेक लेख लाला लाजपत राय के लेख जैसे निकलते थे जिसमें नारी शिक्षा से ज्यादा उसके कर्तव्यों की शिक्षा पर बल दिया जाने लगा था ।

मर्यादा में हर विषय पर सिर्फ उनके सुलझे ही नहीं बेहद उत्तेजक विचार भी हैं । उमादेवी नेहरू की बेहद सुलझी विचारधारा है वहीं लाला लाजपत राय की स्त्री धर्म को निभाने के उपदेश हैं — एक और जहां कहीं स्त्री ने लेख लिखा है वहीं लेखिका के नाम की जगह अमुक की पत्नी — अर्थात अपना लेख छपवाने की अनुमति है अपने नाम की नहीं । वहीं दूसरी ओर नियोग पर लेख है, बालविधवा विवाह का अधिकार देने के साथ-साथ दोनों को सही ठहराने का उद्देश्य भी है ।

कुछ लेखों को छोड़कर अधिकतम लेखों में एक बहस है समाज के रहनुमाओं से वोट के अधिकार पर शिक्षा के उद्देश्य पर सामाजिक और राजनैतिक जीवन में खुल कर सामने आने की भागीदारी को लेकर — लेकिन परम्परागत रूप को भरभरा कर गिरा देने का उद्देश्य नहीं ।

"मर्यादा" में आलोचना प्रत्यालोचना" नाम से एक स्तम्भ निकलता था जिसका उद्देश्य साहित्य आदि के विवादग्रस्त

विषयों की ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित करना तथा उन पर विद्वानों की स्वतन्त्र सम्मतियां प्रकाशित करना होता था।" उसमें भवभूति के उत्तर रामचरित " र एक दिलचस्प बहस हुई थी। भवभूति का उत्तर रामचरित --

बद्रीनाथ भट्ट द्वारा लिखी गयी प. मन्ननद्विवेदी बी. ए. की भवभूति विषयक लेखमाला की आलोचना दिलचस्प है -- "रामचन्द्र जो आदर्श पति थे यह तो भवभूति जरा भी नहीं दिखला सका है और बेचारा दिखाता भी कैसे ? मालूम होता है भवभूति की राय में भी रामचंद्र जी में वे कमजोरियां थी जिनका एक मानसिक बल (MORAL COURAGE) वाले पति में होना असम्भव है तभी शायद उसमें उसने यह कहलवाया है कि --

"शैशवात प्रभृति पोषिता प्रियाम
साहदा दपृथगाश्रया मिमाम्
छझना परि ददाभि मृत्यवे
सैनिको गृ ... * कामिव।"

राम ने बिना सोचे समझे निर अपराधिनी सीता को एक धोबी के कहने पर घर से निकाल दिया था ... वे मर्यादा, सज्जनता और सीता तक की मूर्खों को खुश करने के सामने कुछ

---

* अस्पष्ट

परवाह नहीं करते थे.... पाठक महोदय । हमारी इन बातों से आप यह न समझिये कि हम रामचंन्द्र जी की बुराई कर रहे हैं हम तो केवल इस बात का विचार कर रहे हैं.... श्री राम नारायण जी ने द्विवेदी जी के लेख का उल्लेख देते समय धर्म नीति समाज नीति और राजनीति की दुहाई दी है जिस समाज में इन तीनों नीतियों का पालन किया जाता है वही समाज सुखी और समृद्धशाली दिखायी देता है -- "बहुत अच्छा उसकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती जाती है" -- होती होगी । पर यह तो बताईये कि .... बेकसूर सीता को निकाल बाहर करना कि धर्म नीति में आता है ? यदि ऐसा हो तो ऐसी धर्मनीति को दूर से प्रणाम ।

सीता क्या कोई बड़ी भारी शत्रु थी जो उसके लिए यह निर्वासन दण्ड उचित समझा गया ? निरपराधिनी सीता साध्वी स्त्री का बहिष्कार क्या कभी भी किसी सभ्य समाज में प्रचलित हो सकता है । क्या सीता जी अपने आप रावण के यहां चली गयीं थी जो धोबी के कहने से राम ने उन्हें निकाल बाहर किया । पक्षपात छोड़ कर विचारिये यह ऐतिहासिक विषय है धार्मिक नहीं .... जिन ऋषियों ने इसे {अग्नि-परीक्षा को} देखा था क्या उनसे यह न हो सका कि अयोध्यावासियों को

समझाते ....

"आर्य कठोर, यशः किल वे प्रियं
किम यशो ननु घोरमत परम
किमभ्व किपि ने हरिणी दृषा
कथम नाथ कथं वत मन्य से ।"[1]

अपयश के पीछे सती साध्वी को त्यागना .... उनमें मानसिक बल का नामोनिशान नहीं था .... यदि अब भी परीक्षा कर देते तो धोबी अपना मुंह लेकर रह जाता पर उन्हें तो बिना सोचे समझे निर्वासन कराकर अपनी अदूरदर्शिता दिखलानी थी ऐसा मालूम होता है .... क्या बेकसूर को निर्वासन दंड देना ही न्याय है । रामचंद्र जी आदर्श थे इसमें संदेह नहीं और सीता के प्रति उनका कुव्यवहार ही देखकर शायद हिन्दू लोग निरपराधिनी अबलाओं पर अत्याचार करना भी सीखे हैं ।"[2]

दूसरी तरफ शिवरत्न शुक्ल कहते हैं सीता राम दोनों पर सम्पूर्ण समाज का भार था .... यदि सीता पर उन्हें कोई

---

1. मर्यादा, पेज 61
2. - वही - 63

संदेह होता तो वह उन्हें घर क्यों लाते जिस प्रकार जापान में कुछ वीर पंगुओं ने, बल्कि फ्लीट को नाश करने जापान देश को बचाने के लिए जान बूझ कर जलमग्न हो प्राण दिये थे और दधीची ने देव समाज की स्थिति दृढ़ रहने के लिए शरीर दे डाला था उसी प्रकार निष्पाप सीता का त्याग भी हिन्दू समाज की रक्षा कर रहा है। आज भी जिन गुणों पर मुग्ध होकर अन्यमतावलम्बी भी हमारी स्त्रियों की प्रशंसा करते हैं उनमें से एक यह भीहै समाज को अस्त व्यवस्तता से बचाने के लिए मर्यादा पुरूषोत्तम राम ने ये दोनों कर्म किए।"

इन दोनों लेखों को पढ़कर दो महत्वपूर्ण मुद्दे सामने आते हैं एक तो उस समय हिंदू और हिन्दी समाज इतना संकीर्ण नहीं था कि धर्म और साहित्य पर खुल कर बहस न कर सके दूसरा नारी के सीता के रूप में ही स्वतन्त्रता और अधिकारों पर खुल कर बात होने लगी थी दूसरी और शिवरत्न शुक्ल जी भी सीता के निष्कासन को धर्म की रक्षा से जोड़ने लगे थे। आज स्त्री को जगह बाहर तो मिली है पर घर में कुछ अपवाद

को छोड़कर कुछ नहीं बदला — मैत्रेयी को उसके पति याज्ञवल्क्य ने बहस में जीतता देख कर कहा था चुप हो जा नहीं तो तेरा मस्तिष्क फट जायेगा । शायद यही कारण है कि नाममात्र को हमारे भारत में ऐसी स्त्रियां हुई जिन पर गर्व करने का मौका मिले ।

और दूसरा प्रश्न इस बात का है या यूं कहिये इस भावना का है कि निष्पाप सीता का त्याग धर्म का पालन और हिन्दू समाज की रक्षा कर रहा है उसी प्रसंग में डा. पुरूषोत्तम अग्रवाल संस्कृति वर्चस्व और प्रतिरोध के एक लेख में उद्धृत यह प्रसंग — एक तरफ सीता का प्रेम और गर्व दूसरी तरफ है राम की दो टूक बल्कि निष्ठुर मर्यादा — सीता समझती रहीं कि युद्ध उनकी मुक्ति के लिए हुआ है । राम इस खुशफहमी के लिए जगह ही नहीं छोड़ते यह जो युद्ध किया विजय प्राप्त की यह त्वदर्थम् मायाकृतः — तुम्हारे लिए नहीं किया, जिस कारण मैंने तुम्हारा उद्धार किया है वह उद्देश्य मेरा सिद्ध हो गया — तुममें अब मेरी कोई आसक्ति नहीं है, जहां इच्छा हो चली जाओ (बाल्मीकि रामायण 6/115×19-21) महाभारत के रामोपाख्यान में राम का कथन और भी हृदयविदारक है मैथिली मैं तुम्हारा परिभोग नहीं कर सकता, तुम कुत्ते द्वारा चाटे गये घी की तरह हो जिसका

उपयोग सम्भव नहीं है ।" (महाभारत 3/275/13) उपर्युक्त उद्धरण देने की जरूरत इसलिए पड़ी कि नोट और वोट की राम-भक्ति के इस जमाने में बहुत से विद्यार्थियों के लिए राम-कथा का प्रमाणिक पाठ बाल्मीकि या व्यास का नहीं बल्कि रामानन्द सागर का है, सीता स्वयं अपमानित होने के लिए व्याकुल थी ।"[1] महाभारत के काल से रामानन्द सागर तक आते-आते सम्भवतः परिस्थितियों से समझौता करना सीख गयी हो जो जानती है कि निष्कासन तो होना ही है बेहतर है बाखुशी स्वीकार किया जाय ।

यह बात क्या कभी किसी को आश्चर्यजनक नहीं लगती कि भारत की यश महिमा का वर्णन हो, विशालता दृढ़ता का वर्णन हो वहां वह भारत देश हो जाता है और जहां अत्याचार सहने और दासता की बेड़ियों में जकड़ा हो वह भारत देश नहीं माता हो जाती है । कुछ भी हो लेकिन भारत देश पुर्लिंग हुआ और उसे बेड़ियों में जकड़े दिखाना या फिर रोते लहूलुहान दिखाना ढांचे में फिट नहीं बैठता, सब कुछ कितनी सोची समझी नीति के तहत है कहा-कहां से हटायेगा ।

---

1. संस्कृति वर्चस्व और प्रतिरोध पृ. सं. 60.
   ले. डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल

"मर्यादा" में मार्च 1911 में पतिव्रत {आख्यिका} छपी 20 वर्षीय भुवनमोहन म्योर सेन्ट्रल कालेज में पढ़ते हैं पत्नी की अस्वस्थता का हाल सुनकर घर आये -- उन्होंने विचार किया — जिस प्रकार पत्नी का धर्म है कि अपने पति के सुख की ओर सदा लक्ष्य रखे वैसे ही क्या पुरूष का कर्तव्य स्त्री को सुखी रखने की चेष्टा करना नहीं हो सकता ? क्यों नहीं मेरा विश्वास है कि जो पुरूष स्त्रियों को क्षुद्र दासी की भांति समझते हैं वे बड़े ही नीच, स्वार्थी और कुटिल हैं .... इन्हीं सब विचारों के अनुसार भुवन अनेक दास-दासी तथा अपनी माता और बहन के रहते जहां तक बनता है वहां वह स्वयं ही रोगिनी की सेवा करते हैं लोग उन्हें स्त्री देवता का उपासक भले ही कहें परन्तु भुवन को आनन्द इस बात का है कि वे अपना कर्तव्य करते हैं ।" यह कहानी पढ़कर मुझे ही नहीं किसी को भी लग सकता है वाह ! क्या प्रेरणादायक कहानी है पर कहानी का सारगर्भित उद्देश्य स्पष्ट होता है अंत में — रोगिनी पत्नी मर जाती है भुवन कभी न शादी करने का प्रण लेता है -- मरती पत्नी से वह कहता है -- मैं उन पुरूषों में से नहीं जो स्त्री को भोग-विलास की सामग्री मात्र समझते हैं । मेरी समझ से स्त्री की मृत्यु हो जाने पर पुरूष का पुनः विवाह करना भी वैसे ही घोर अधर्म है ।"

भुवन पूर्ण पत्नीव्रत थे उन्होंने अपनी प्रतिज्ञानुसार जन्म-भर फिर दूसरा विवाह नहीं किया, भारत की महिलाएं चिरकाल से अपने पतिव्रत धर्म के लिए प्रसिद्ध हैं अपने इसी गुण से उन्होंने जगतभर के स्त्री संसार में उंचा स्थान पाया है किन्तु दुर्भाग्य से ..... विधवा विवाह के प्रचार की आवश्यकता बतायी जा रही है .... इसका एकमात्र कारण है कि यहां के पुरूष अपने पत्नीव्रत को भूल से गये हैं वह क्या सौभाग्य का दिन होगा जब भारतवर्ष पत्नीव्रत पुरूषों और पतिव्रता स्त्रियों का अवतरण हुआ करेगा ।[1]

तो सारी पीड़ा का कारण है — विधवा विवाह, उसी को लेकर कहानी का अवतरण हुआ । समाज सुधारक विधवा विवाह पर जोर दे रहे थे और विधवा विवाह होने भी लगे थे जिससे पुरातनपंथी हिन्दुओं को परेशानी होने लगी थी जिसका विरोध प्राचीन काल की परम्पराओं की दुहाई देकर होता था । यहां लेखक महोदय ने विधवा विवाह को रोकने का बुद्धिजीवी तरीका बताया ।

---

1. मर्यादा, पेज संख्या 242, संख्या 6

स्वामी विवेकानन्द अपने एक व्याख्यान में स्त्री के मां, पत्नी रूपों की चर्चा करते हैं साथ ही पुत्री रूप की । वे पुत्री के विषय में कहते हैं -- हम स्त्री को एक पुत्री के रूप में लेंगे ‌(उस रूप की चर्चा करेंगे ।) भारतीय घरों में क्या एक समस्या है -- या और जाति विभाग कर बेचारे हिन्दू को पीस डालते हैं -- जाति में विवाह हो इसके लिए कभी-कभी तो भिखारी बन जाना पड़ता है । यही कारण है कि कन्या हिन्दू जीवन की एक बड़ी समस्या है आश्चर्य की बात तो यह है कि संस्कृत में कन्या के दुहिता कहते हैं -- दूहिता का एक अर्थ -- जो घर का सारा दूध दुह ले जाती है "[1] समाज व्यवस्था के लिए कन्या दोषी है क्या समाज नहीं ?

"धर्म गृह कार्य शिल्प विज्ञान स्वास्थ्यरक्षा .... आदि सब विषयों का मूल मर्म सिखलाना उचित है नाटक और उपन्यास तो उनके पास तक पहुंचने ही नहीं चाहिये सीता, सावित्री, दमयंती लीलावती, मीराबाई आदि के जीवन चरित्र कुमारियों को समझाकर उन्हें अपने जीवन को इसी प्रकार गढ़ने का उपदेश देना होगा ।"[2]

---

1. भारतीय नारी , स्वामी विवेकानन्द, पेज संख्या 7।

2. - वही -

सीता और मीरा बाई -- दोनों के चरित्र में कितनी असमानता है इस पर शायद विवेकानन्द जी ने ध्यान नहीं दिया होगा ।

स्त्री शिक्षा और दलितों का स्वीकार अनमने ढंग से ही अंग्रेजों की नजर में अपने को प्रगतिशील दिखाने के प्रयास में शुरू हुआ था लाला लाजपत राय मर्यादा में एक लेख में लिखते हैं -- शिक्षा -- जिसमें स्त्रियों को सहकार्यों की शिक्षा दी जानी चाहिये, ऐसी शिक्षा नहीं जो उन्हें गृह के धर्म कर्तव्यों से जरा भी विमुख करें । लाला लाजपत राय का यह लेख जिसे कुछ व्यंग्यात्मक तरीके से शुरू करते हैं ।"अफ्रीका में कुछ स्त्रियां इस बात पर दावा ठोंक सकती हैं कि उनके पति ने उनके कपड़ों को नहीं सीया ।

---- कुछ लोग स्त्रियों के लिए आंदोलन कर रहे हैं । वस्तुतः उनका उद्देश्य तो अच्छा है पर उनके परिश्रम का फल निरर्थक होगा मानसिक और शारीरिक बातों में स्त्रियां पुरूषों से भिन्न रहेगी यह भेद स्त्री पुरूष दोनों के लिए अच्छा है इन्हीं मतभेदों के कारण स्त्री पुरूष में चिरस्थायी अनुराग रहता है ।" शिक्षा स्त्री पुरूष दोनों को भिन्न-भिन्न दी जानी चाहिये । पुरूष को मनुष्यत्व की प्राप्ति में सहायता प्राप्त होने में सहायक हो लेकिन विवाह

के अधिकारों के संबंध में स्त्री पुरूष को बराबर का अधिकार मिलें । इस सब से एक बात स्पष्ट है कि मानसिकता यही है कि स्त्री को स्त्रियोचित्त काम करते हुए पूर्णरूप से अपने धर्म का पालन करना चाहिये । इसके साथ हर लेख में कुछ इस तरह के जुमले (वाक्य) -- "हमको लगता है स्वतन्त्र रूप से स्त्री पुरूष पर विचार करना उत्तम होगा । विभिन्नता का अर्थ नहीं कि स्त्री को पुरूष से हीन समझा जाय उसे उन्नति करने का अवसर पुरूष के समान दिया जाय ।"

स्त्री पुरूष में समानता है ऐसा समझना भूल है अपने देशवासियों को इससे बचना चाहिये पर यह न समझना चाहिए कि मैं स्त्रियों को वोट देने का विरोधी हूं ।[1] आप शिक्षा साथ नहीं देंगे, मानव न मानते हुए समानता का व्यवहार न करेंगे स्त्रियोचित्त शिक्षा देंगे उसके बाद भी आपको दर्द है कि स्त्रियों की उन्नति के प्रयास किये जायें । खैर यह दर्द तो समय-समय पर आज भी बहुत से सहमत और नसरीन पर प्रतिबंध लगाने वाले, प्रतिबंध पर चुप्पी धारण करने वालों पर और अमीना की शादी को सही ठहराने वालों को कभी-कभी होता रहता है ।

---

1. मर्यादा-1, भारतवर्ष में स्त्रियों का पद, लेखक लाला लाजपत राय 1919 अगस्त.

उस समय अनेक सम्मानीय प्रगतिशील नेता भी औरतों के सवाल पर समझौतावादी रवैया अपनाते थे । उस समय स्वराज्य के राष्ट्रीय आन्दोलन को जरूरतों की दृष्टि से नारी के विकास को समर्थन मिला जो नव और पुरातन का जरूरत के हिसाब से समझौतावादी रूप था । बाहर जगह मिले या पारिवारिक दासता बनी रहें कर्तव्यों के उलाहने देकर । जो भी हो यह एक सुखद स्थिति थी क्योंकि यह शुरूआत थी। "गांधी जी ने कहा कि स्त्री पुरूष बराबर हैं स्त्रियों को पुरूषों के समान स्वाधीनता पाने और ऊंचे से ऊंचे पद पर पहुंचने का अधिकार है । शिक्षित होने पर स्त्रियों को यह अधिकार नहीं मिल सकता ऐसा दृष्टिकोण अन्यायपूर्ण है । शिक्षा से ज्यादा जरूरी बात अपनी स्थिति की चेतना है । स्त्री के पढ़ी-लिखी न होने पर पुरूष अपने बराबर उसका अधिकार न माने यह ज्यादती है । फिर भी, स्त्रियों को शिक्षा मिलनी चाहिए, लेकिन यह जरूरी नहीं कि स्त्री पुरूष दोनों एक सी शिक्षा मिले .... स्त्रियां पढ़-लिखकर नौकरी या व्यवसाय करें इसमें मेरा विश्वास नहीं है । गांधी जी ने बाल विवाह का विरोध किया । इस तरह गांधी जी ने स्त्रियों के सवाल पर समझौतावादी रवैया अपनाया ।"[1]

---

1. वीरभारत तलवार - राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य पृष्ठ संख्या 147

उसी समय उमादेवी नेहरू अपने समय की संवेदनशील, प्रखर सुलझे विचार वाली समझदार लेखिका थीं उन्होंने "मर्यादा" में स्त्रियों के वोट के अधिकार पर एक महत्वपूर्ण लेख लिखा जिसका ऐतिहासिक महत्व है । उमा देवी नेहरू ने मर्यादा में स्त्रियों के अधिकार नाम से एक लेख लिखा - वे लिखतीं है -- मर्यादा के विशेष अंक में प्रकाशित होने वाले विषयों के कई सूची पत्र हमने देखे परन्तु इनमें किसी में भी ऐसे विषय नहीं दिखाई पड़े जिसका स्त्री जाति से विशेष संबंध हो ... हम जिस प्रश्न पर इस लेख में विचार करना चाहती हैं वह यह है कि स्त्रियों को इन कौंसिलों के मेम्बर चुनने का अधिकार देना उचित है या नहीं पश्चिम इस प्रश्न का उत्तर दे चुका उसने सिद्ध कर दिया कि हर देश के निवासी ही उसके वास्तविक राजा है दूसरे यह कि पुरूष और स्त्रियों में भेद करना समाज और जाति को हानि पहुंचाता है । वे आगे कहती हैं इन प्रश्नों का उत्तर अब भारत को देना है इसके उत्तर पर स्त्रियों की उन्नति निर्भर है । इसमें हम ऐतराजों का उत्तर देना चाहती है पहली वजह यह बतायी जाती है कि हमारा समाज इस परिवर्तन के लिए तैयार नहीं है ।

हमारी सम्मति में हर देश समाज उन सुधारों के लिए सदा तैयार होते जो उसके विकास में सहायक हो । ऐसे सुधारों

के लिए तैयार न होना देश का अपमान करना है .... जो लोग अन्याय को यह कह कर जीवित रखना चाहते हैं कि समाज तैयार नहीं है वे केवल अपने संकुचित विचार छिपाने के लिए एक ओट बना लेते हैं ।[1]

ऐसे दो टूक प्रश्न उमादेवी नेहरू ही कर सकती थीं कि भारतीय महिलाएं अशिक्षित हैं राजनीतिक अधिकारों को बरतने का उनमें ज्ञान नहीं तो कौंसिलों के सभासदों के वास्तविक चुनाव का अनुभव तो भारतीय पुरूषों को भी नहीं है । यदि उन्हें यह ज्ञान मैन्युस्पलिटी के चुनावों में हुआ है तो मैन्यस्पलिटी में यह अधिकार हमारे प्रान्त में स्त्रियों को भी है -- अशिक्षा पर वे पूछते हैं क्या शिक्षित पुरूषों को ही यह अधिकार होगा यदि नहीं तो फिर स्त्रियों को ही यह बंधन क्यों है ।"

और इस संबंध में एक अन्य तर्क का वह जवाब देती हैं इस संबंध में कहा जाता है कि जब भारतीय स्त्रियां अपने अधिकारों के लिए आंदोलन करें तो उन्हें मर्दाना कहें, चुप रहे तो यह कहना

---

1. मर्यादा - जनवरी 1919, पृ. 47,48

कि वे अपने अधिकार नहीं मांग रहीं, कहां का न्याय है ?

उमा देवी नेहरू एक-एक कर सब विरोधों का जवाब सविस्तार एवं तर्कपूर्ण देती हैं । वह यह भी बहुत अच्छी तरह समझती हैं कि अपने संकुचित विचारों में फंसकर इस अवसर खो बैठना शताब्दियों के लिए निराश हो जाना है ।

1919 में एक लेख निकला मोहनदास करमचंद गांधी द्वारा लिखित — "स्त्रियों को अपनी जीविका के लिए मजदूरी करना आवश्यक है जहां स्त्रियों को टाइपिस्ट बनना पड़ता है वहां समाज की व्यवस्था भंग हो जाती है और जिस राष्ट्र ने ऐसी प्रणाली ग्रहण कर ली है उसका विनाश शीघ्र हो जायेगा । इसमें सुधार का काम सरकार का नहीं हम सबका है ।"[1 +]

ऐनी बेसेन्ट के लेख "मर्यादा" में छपते रहते थे । उन्होंने भी महिलाओं के वोट के अधिकार के बारे में लिखा, शिक्षा और घर की अन्य समस्याओं के बारे में लिखा — उन पर विचार व्यक्त किए — "प्राचीन काल में स्त्रियाँ केवल स्त्री होने के कारण से अलग

---

1. मर्यादा अक्टूबर 1919, पृ. 148

+ इस संदर्भ में कृपया पृष्ठ संख्या 121 भी देखें.

नहीं रखी जाती थीं उनको योग्यता अनुसार अधिकार दिये जाते थे।"

विधवा विवाह पुर्नविवाह पर लेख हैं उमा देवी द्वारा लिखित — "अछूत जातियों की दशा" में वे इस प्रथा का खत्म करने का स्त्री जाति से आह्वान करती है ।

मिसेज रामाबाई रानाडे द्वारा लिखित "शिक्षा की व्यवहारिक आवश्यकता" को लेकर एक लेख लिखा जिसमें सन्तान की उन्नति के लिए शिक्षा पर बल बड़े सरल एवं तर्कपूर्ण ढंग से लिखा गया है । उसी से देश का विकास भी होगा । श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू ने — "स्त्री दर्पण" पत्रिका की सम्पादिका तो थी हीं साथ ही "मर्यादा" ने उन्हें स्त्री के विशेष अंक का सम्पादन का भार भी सौंपा था इसमें उनका चित्र सहित परिचय दिया गया ।

मर्यादा के एक अंक में विज्ञापन निकला --

नियम

असहाय विधवा स्त्रियों को नीचे लिखे नियमानुसार सहायता दी जायेगी ।

1. सहायता भारतवर्ष के विधवा क्षत्राणियों को देने का प्रयत्न किया जायेगा ।

2. सहायता उन्हीं विधवाओं को दी जायेगी जो असमर्थ हैं जिनके कोई सहायक नहीं है । {3} ......

3,4 इस विषय में गांव के प्रतिष्ठित पुरुषों और राज्य के प्रमाण पर मुख्य करके विचार किया जायगा ।

5. सहायता की रकम 12 रुपये से 36 रुपये की वार्षिक होगी याने 12, 18, 24, 30 और 36 रुपया वार्षिक जैसा उचित समझा जायेगा वैसा दिया जायगा ।

टिप्पणी :— यद्यपि उपरोक्त सहायता अभी केवल क्षत्राणी विधवाओं के लिए खोला गया है परन्तु परमात्मा की कृपा हुई और कोष की वृद्धि हुई तो सहायता चारों वर्णों के लिए खोल दी जायेगी ।

ठाकुरबैज नाथ सिंह,

खजुर गांव नौबस्ता जि. रायबरेली अवध

असहाय विधवा स्त्रियों के सहायता मिलने का प्रार्थना पत्र —

सेवा में

श्रीयुत

श्रीमान जी नमस्ते

निम्नलिखित अपना वृतान्त आपके विचारार्थ भेजती हूं ।

1. नाम

2. इस समय मेरी आयु यह है

3. शरीर अंग भंग रोगी या स्वस्थ है

4. पिता का नाम वर्ण और गोत्र

5/6 विवाह के समय मेरी कितनी आयु थी

7. पति के शरीर बतने के समय मेरी आयु कितनी थी

पति का नाम वर्ण गोत्र ।

..... 18. अब क्या काम करना चाहती हो

20. क्या अपने लड़का लड़कियों को पढ़ाना भी चाहती हो

मुखिया के हस्ताक्षर ....

टिप्पणी

हस्ताक्षर कर्ताओं से निवेदन है कि कृपया विधवाओं की दशा को जांच के हस्ताक्षर करें ।"[1]

इस तरह विधवा विवाह के साथ-साथ विधवाओं को इस तरह सहायता भी दी जाती थी । पर यहां भी जाति की प्रमुखता थी ।

---

1. मर्यादा, 1918, विज्ञापन

अमृतसर में "कांग्रेस की महासभा" का आयोजन हुआ जिसमें भाग लेने के लिए अनेक स्त्रियों को आमंत्रित किया गया क्योंकि इस समय तक महिलाएं राजनीति में खुलकर भाग लेने लगी थीं पर इस भागीदारी को किस गम्भीरता से लिया जाता था इस भेद का खुलासा कुसुम कुमारी नाम की लेखिका का लेख — "अमृतसर में कांग्रेस महासभा" में करती है । और यह लेख किसी व्याख्या की मांग नहीं करता क्योंकि यह लेख जिस बेबाकी से लिखा गया है उसके बाद वस्तुस्थिति स्वयं स्पष्ट हो जाती है — "पंजाबी बहनें जोश में बहुत सी पहुंची मैं दर्शकों की गलैरी में बैठी हालांकि मैं संयुक्त प्रांत की प्रतिनिधी होकर गयी थी । वहां पर मैंने अपनी बहनों को समुद्र की तरह उमड़ते देखा परन्त अफसोस का विषय यह है कि महिलाओं की ओर सिवा आपस के बातचीत होने के बंदेमातरम गीत या व्याख्यान कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता था क्योंकि हमारे देश हितैषी भाई अपनी धर्म माताओं और धर्म भगनियों की ओर मुंह करके व्याख्यान नहीं देते थे । मैं अपने भाइयों से सिर्फ इतना पूछना चाहती हूं कि जब हम मूर्खता और अज्ञानता के बस में होकर गंगा या जमुना में नाम मात्र का कपड़ा पहनकर नहाती हैं उस वक्त तो हमारी ओर ताकते हैं और जिस वक्त हम शान्त चित्त से देश के हालात सुनने आये हैं उस वक्त आप इतने पंडित बन गये कि हमारी तरफ पीठ करके व्याख्यान

दें या जिस वक्त गिरे हुए भारत के उद्धार की तैयारी होती है उस वक्त हमें मुंह फर कर समझाया जाता है भाइयों क्या आप हमें साथ में लिए बिना देश का उद्धार कर सकते हैं ।

दूसरी समस्या थी सारे व्याख्याताओं का अंग्रेजी में व्याख्यान देना जिससे हमारे अधिकांश बहनों भाईयों की कुछ पल्ले नहीं पड़ा क्या आप धर्म से कह सकते हैं कि आपके उस प्रस्ताव का अर्थ जिसको आपने 31 दिसम्बर को वोट लेकर पास कराना चाहा था कितनी बहनों और भाइयों की समझ आ गया था ऐसी दशा में वे आपको क्या वोट दे सकते हैं ।

महात्मा गांधी ने हिन्दी में भाषण दिया जबकि वो इस भाषा के बहुत अच्छे जानकार नहीं हैं — इसलिए कोई आपस में कहने लगती थीं जो महात्मा गांधी कह रहे हैं वह सच है यह सच है कि कोई तिलक महाराज की शरण चाहती थी समझ कर भी कोई कुछ नहीं कह सकती थी । जब वह उनकी बात ही न समझ सके ।

हम अपने ऊपर होने वाले जुल्म के लिए रोवें या आपकी फैन्सी साड़ियों और जैन्टलमैनी कोट पतलून का ख्याल

करें ।"[1]

मर्यादा अपने समय की एक ऐसी पत्रिका थी जिसका फलक पर राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर बहस राजनीति आदि पर बहस उसके मुख्य चिन्तन का विषय थी और जिसमें नारी सम्बन्धी विषयों समस्याओं पर गम्भीरता से चिन्तन होता था यह अवश्य है कि बहुत से लेख -- विशेष तौर पर शिक्षा सम्बन्धी इनमें नारी के कर्तव्यों और गृह शिक्षा पर मुख्य बल था पर इसके साथ ही हमें यह याद रखना होगा कि वह सन 1911 से 1923 के बीच का समय है जब रूढ़ियों और पुरानी परम्पराओं की जगह नई चेतना को स्वीकृति मिलनी आरम्भ हुई थी, अवश्य ही परम्पराएं टूटनी पहले आरम्भ हो चुकी थी -- "बालाबोधिनी" जो भारतेन्दु द्वारा निकाली गयी स्त्रियों पर उसका नारी जागृति में कोई विशेष योगदान नहीं बल्कि उसमें कहीं-कहीं तो ऐसा ही प्रतीत होता है कि उसे नारी के कर्तव्यों की याद दिलाने के लिए निकालना आरम्भ किया था । "बालाबोधिनी" के अप्रैल 1976 के अंक में "आरनेलस की कुमारी" की कहानी छपी है । यह आरनेलस {फ्रान्स} की "वीर राजकुमारी जोन्स" की कहानी है

---

1. मर्यादा, 1920, पृ. 98

जो अपने देश के लिए जान की बाजी लगाकर लड़ती है । एक लड़ाई में वह अंग्रेजों के द्वारा पकड़ी जाती है और जीने के लिए उनकी शर्त न मानने पर जलाकर मार डाली गयी । .....सारी कहानी सुनाने के बाद बिहारी चौबे (इस कहानी के लेखक) जो निष्कर्ष देते हैं वह यह कि "अति साहस और माया भी बुरा ही फल देती है । स्त्रियां जो झूठमूठ और माता भवानी की नकल करती हैं सो सबका सत्य होना असम्भव ही है और लड़कियों को जो विश्वास हो जाता है सो न होना चाहिए । स्त्रियों के घर में जो पति देवता रहते हैं उन्हीं की भक्तिपूर्वक सेवा करना परमोत्तम है ।"*

"वे सारे लोग जो सोचते हैं कि "बालाबोधिनी" के द्वारा भारतेन्दु किसी बड़ी क्रांति का सूत्रपात कर रहे थे, वह देखें कि भारतेन्दु की अपनी पत्रिका "बालाबोधिनी" में स्त्री के स्वत्व और देश धर्म को पहचानने का क्या अर्थ किया जाता है भारतेन्दु युग के रचनाकारों की स्त्री से अपेक्षा स्पष्ट नहीं होती । यह एक बड़ा अन्तर्विरोध है कि एक ओर तो जोन्स की कहानी सुनाकर उसे माता भवानी की नकल करने से रोकते हैं तो दूसरी

---

* "बालाबोधिनी" अंक मई 1876 पृ. 42

और "नीलदेवी" की कहानी के द्वारा उसे अपने प्राचीन गौरवमयी स्थिति से परिचित कराते हैं ।[1]

स्त्री दर्पण पूरी तरह अपने नाम के अनुरूप स्त्री विषयों पर आधारित थी । मर्यादा में सिर्फ शिक्षा और सामाजिक भागीदारी के लिए ही स्त्री में चेतना जागृत करने पर लेख नहीं थे बल्कि 1919 दिसम्बर में — "भारतीय नगरों में पाप का व्यापार" पर एक लेख निकला फिर उसी विषय पर 1921 में — "भारत वर्ष में वेश्यावृत्ति का व्यवसाय" इस पर लेख हैं ।

और उसमें वेश्यावृत्ति के कारणों पर गहराई से विचार प्रकट किये गये हैं । उसमें कहा गया है — गरीबी और बाल विधवा दोनों ही वेश्यावृत्ति के कारणों में से मुख्य हैं — "अकेले कलकत्ता में 1600 वेश्याएं हैं लोग आनन्दवश और कभी-कभी प्रतिष्ठा के लिए वेश्यावृत्ति को अपनाते हैं — प्राचीन भारत में वेश्याएं अपनी आय का आधा भाग कर के रूप में देती थीं ग्राहकों को पूरा ब्यौरा देना पड़ता था लेकिन उपदंश नाम की गंदी बीमारी नहीं थी जिसके अब भारत के लोग शिकार होते जा रहे हैं । इस रोग का आरम्भ का वर्णन भावप्रकाश में मिलता है उसमें उसकी उत्पति यूरोपियनों

---

1. उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्त्री चेतना और बाला-बोधिनी — लघु शोध ग्रंथ, पृ. 80-81

और मुख्यतः पोर्तुगीजों के संसर्ग से बतायी गयी है । इसको रोकने के लिए सर्वप्रथम तो इसमें दंड की व्यवस्था सिर्फ स्त्रियों के लिए ही नहीं पुरुषों के लिए भी होनी चाहिए ।

और सामाजिक सहानुभूति ही स्त्रियों का प्रतिकार हो सकता है । विधवाश्रम अनाथालय दानशाला तथा अन्य औद्योगिक संस्थाएं जिनकी स्थापना मुक्ति के इच्छुक समुदाय ने सफलता से की है बहुत उपयोगी हो गयी है और उनके द्वारा स्त्रियों की स्थिति में कुछ सुधार होगा ।"[1]

भारतवर्ष की आधुनिक सुशिक्षितास्त्रियां नाम से श्रीमती शारदा मेहता ने एक लेख लिखा -- "आधुनिक अथवा नूतन सुशिक्षित स्त्रियों में नवीन भारत का एक अंश हैं । यह कोई छोटा सा अंश नहीं वरन समस्त भारतवर्ष की उन्नति का एक बहुत बड़ा अंश है ।"[2]

जिस प्रकार माता अपने उपर अपने पुत्र का पोषण भार लेती है वैसे ही पुत्री के पोषण में भी उसे ध्यान देना उचित है

---

1. मर्यादा, दिसम्बर 1919, पृ. 120

2. - वही - फरवरी 1914, पृ. 201

कारण यह है कि वह कोई निरुपयोगी जीव नहीं है ।

वर्तमान काल में सब प्रकार की उद्योग चपलता इतनी बढ़ रही है कि स्त्रियां केवल अपने पति मात्र को देवता मानकर बैठी रहेंगी तो काम न चलेगा । उनको प्रचलित आंदोलन में भाग लेना आवश्यक है ।"[1] इस तरह मर्यादा के समय में पुरानी परम्पराएं चरमराने लगी थीं । स्त्री शिक्षा, स्वतंत्रता की आवश्यकता समाज में समझी जाने लगी थी यह विकास कुछ पुराना रखते हुए कुछ नया अपनाने लगा था जो कि सही तरीका भी था । यह सम्भव भी नहीं था कि अचानक ही कुछ वर्षों में सारी पुरानी परम्पराओं को छोड़कर सब कुछ नया अपना लिया जाता तब से लेकर आज तक नारी ने बहुत प्रगति की है पर अभी भी पूर्ण मुक्ति की तलाश में है ।

---

1. मर्यादा — स्त्री विशेषांक, पृ. २०।

अध्याय - 3

"मर्यादा के सम्पादकीय सरोकार और राजनैतिक निहितार्थ"

"मर्यादा" का सफर शुरू होता है 1910 नवम्बर से, यह वह समय है कि जब भारत के इतिहास में नई जन चेतना और समझ के साथ एक जागरूक और बौद्धिक वर्ग तैयार हो चुका था और प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश के लिए प्रयास करने लगा था पत्रकारिता जीवन का एक नया अहम हिस्सा बन चुकी थी -- अकबर इलाहाबादी का यह शेर -

खींचों न कमानों को न तलवार निकालो,
जब तोप मुकाबिल हो अखबार निकालो ।

इसी तथ्य की ओर इंगित करता है ।

यही अखबार, पत्रकारिता अपना रोष प्रकट करने का सबल माध्यम बन चुके थे ।" हिन्दी पत्रकारिता युगबोध का सर्वाधिक सबल माध्यम है विश्व की गतिविधि, स्वराष्ट्र के उत्थान पतन तथा क्षेत्र विशेष की ज्वलंत समस्यायें पत्र पत्रिकाओं से ही सुस्पष्ट होती है पत्रकारिता का उद्भव और विकास भारतीय जन जीवन के उत्कर्ष और अपकर्ष का इतिहास है ।"[1]

"मर्यादा" साहित्यिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय और सामाजिक मुद्दों पर बहस करने वाली और उन बहसों को सुलामंच प्रदान करने वाली एक ऐसी पत्रिका थी जिसमें उस समय के प्रत्येक ज्वलंत प्रश्न से पाठक की चेतना को झकझोर देने की ही कोशिश नहीं की बल्कि अपने प्रयत्न में कामयाब भी रही ।

1· स्वतन्त्रता आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता -डा अर्जुन तिवारी

उसने सर्वप्रथम सन् 1913 दिसम्बर में " दक्षिण अफ्रिका में हमारे प्रवासी भाई " इस पर एक विशेष अंक निकाला और फिर फरवरी में 1914 में स्त्री पर " मर्यादा " का विशेष अंक निकाला, अप्रैल 1914 में ही "अकाल" पर विशेष अंक निकाला । फिर एक और स्त्री विशेषांक और " मर्यादा" का अंतिम अंक भी प्रवासी अंक रहा " मर्यादा " चार सम्पादकों के सम्पादन में निकली । 1910 से मार्च 1919 तक कृष्ण कांत मालवीय के सम्पादन में निकली - अभ्युदय प्रेस से ही यह अन्य दो पत्रों का भी सम्पादन करते थे । इसके प्रबन्धक बद्री नाराण पाण्डेय थे ।

"मर्यादा " से अवकाश ग्रहण करने के समय कृष्ण कांत मालवीय से एक नम्र निवेदन किया --" नम्र निवेदन - भारत माता पुकार रही है हमारे जनरल गांधी ने घोषणा कर दी है सेना में भर्ती शुरू हो गयी -- माता की सेना हमारी बाट जोह रही है माता सपूतों को अपने कष्ट निवारण हेतु आह्वाहन कर रही है ..... मैं जाता हूँ माता के ऋण से मुक्त होने के लिए नहीं वरन इसलिए कि फिर से पैदा होऊं और माता की सेवा करूं, प्रेमी पाठको ! आज आपसे बिदा होना चाहता हूँ .... जिंदा रहा तो फिर मिलूंगा प्रार्थना इतनी है कि जब तक आ न जाऊं मेरी "मर्यादा" की रक्षा कीजिएगा ।"

विनीत - कृष्णाकांत मालवीय [1]

× × × ×

---

1. मर्यादा - मार्च 1919

आगे बिना किसी पूर्व सूचना के जुलाई 1921 में पत्रिका ज्ञान मण्डल से छपी उसके अगले अंक के सम्पादकीय में मर्यादा के पाठकों से नम्र निवेदन छपा --

" पिछले अंक में ही मुझे यह लिखना चाहिए था कि मर्यादा प्रयाग से किस कारण से चली आयी ऐसा मैं नहीं कर सका था इसका मुझे दुःख है सहृदय पाठक मुझे इसके लिए क्षमा करेंगे , भाई कृष्णकांत मालवीय जी से मेरे सगे भाईयों जैसे सम्बंध हैं रुग्ण रहने के कारण कृष्णकांत जी को तीन-तीन पत्रों का बोझ उठाने में और उनका प्रबंध करने में बड़ी कठिनाई होती थी मैं अपने को इसके अयोग्य समझकर इसके बोझ से बचता रहा पर मर्यादा के दशा देखकर निश्चय किया कि इसे काशी लाया जाय इसी बीच मेरे मित्र सम्पूर्णानिन्द जी भी ज्ञान मण्डल में आ गये और इसका भार ऊपर लेने को उद्यत हुए तब मैंने इसे काशी मँगा लिया । यह अब भी कृष्णकांत मालवीय जी की सम्पत्ति है हम इसे थाती की भाँति यहाँ जब तक उनकी इच्छा होगी इसे रखेंगे । ....।

विनीत
शिवप्रसाद गुप्त

इस तरह प्रयाग से काशी तक मर्यादा का सफर तय हुआ सम्पूर्णानिन्द जी ने मर्यादा के अंतिम अंक तक इसके सम्पादन का दुरूह भार उठाया उनके जेल जाने पर एक अंक का सम्पादन प्रेमचंद ने किया और अंतिम प्रवासी अंक के अतिथि सम्पादक रहे बनारसी दास चतुर्वेदी ।

1.

लेकिन प्रयाग से काशी तक आने में मर्यादा में एक बात जो असमान्य दिखती है वह यह कि कृष्ण कांत जी कहते हैं कि वह माता की पुकार पर जा रहे हैं और दूसरी ओर शिवप्रसाद जी कहते हैं कि कृष्णकांत जी को तीन-तीन पत्रों के सम्पादन में कठिनाई के कारण वे " मर्यादा " को काशी ले आये -- दोनों ही तर्क एक दूसरे से भिन्न है, दोनों में कोई ऐसी बात नहीं कि जिसे स्पष्ट न बता कर, कोई बहाना चाहिये था ।

प्रेमचंद इसके सम्पादक रहे - सम्पूर्णा नन्द जी के असहयोग आंदोलन में जेल चले जाने के कारण यह सूचना प्रेमचंद द्वारा सम्पादित अंक में मिलती है--

मर्यादा वैसाख 1979 संवत
सम्पादक -- श्रीयुत सम्पूर्णानन्द (जेल में)
स्थानापन्न सम्पादक श्रीयुत प्रेमचंद

अगले अंक के सम्पादकीय में -- सम्पूर्णा नन्द जी ने लिखा 6 महीने जेल में रहकर फिर दुनिया में लौटा हूँ .... यह कहना असम्भव है कब तक सेवा कर सकूंगा ।" क्योंकि एक महीने ही प्रेमचंद के सम्पादक रहने की सूचना मिली तो सम्भव है बाकी अंकों का सम्पादन सम्पूर्णानन्द जी जेल से ही करते रहे हों ।

पहले अध्याय में इस समय के नवविकसित शिक्षित समुदाय की सांस्कृतिक समस्याओं पर बहस हो चुकी है । उन्नीसवीं शती के दूसरे दशक में अंग्रेजों के विरुद्ध खड़े होने की मानसिकता तैयार होने लगी थी, हिन्दू-मुस्लिम लीग बन चुकी थी कांग्रेस के समकक्ष-मुस्लिम लीग बन चुकी थी ।

"मर्यादा " भी हिन्दू आत्मचेतना से मुक्त नहीं है लेकिन ऐसा नहीं है कि यह चेतना मुस्लिम समुदाय को नकारती है " मर्यादा " जो निःसंदेह एक जागरूक और प्रगतिशील पत्रिका थी उसने मोहम्मद से लेकर अकबर की दिनचर्या और औरंगजेब आदि सभी के जीवन चरित्र पर लेख प्रकाशित किए लेकिन उनमें आलोचना का पुट अधिक रहता था और उसने समकक्ष हिन्दू कवि या उनकी रचनाओं आदि को श्रेष्ठ सिद्ध करने की कोशिश की जाती थी जायसी पर इसमें दो अंकों में बहस हुई हालांकि यह बहस पाठकों को अपने विचार प्रकट करने के लिए खुला मंच देती थी -- जायसी पर बात करने से पहले सम्पादक की इस टिप्पणी को देखना आवश्यक है --" साहित्यिक इतिहास आदि के विवादग्रस्त विषयों की ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित करना तथा उन पर विद्वानों की स्वतंत्र सम्मतियां प्रकाशित करके यथार्थ तत्व को प्रकट करना ही इसके लेखों को ध्यान से पढ़े और उनपर अपनी सम्मतियां लिखकर भेजने की कृपा करें इस स्तम्भ में जिन लेखकों की आलोचनाएं छपेंगी उनके लेखकों को भी एक बार अपने पक्ष का समर्थन करने का अवसर दिया जायेगा ईर्ष्या द्वेष व्यंग्य अथवा व्यक्तिगत आक्षेपयुक्त लेखों को स्थान नहीं दिया जायेगा लेखकों को सदैव तत्वानुसंधान के ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये ।" - सम्पादक ॥

" जायसी और उनका पद्मावत " जायसी की तुलना हिन्दी में कालीदास और भवभूति से करते हुए बताया कि वह अवश्य ही जायसी से श्रेष्ठ थे यह बहस दो अंकों में चली इस लेख में --"हम जायसी के विषय में यहाँ पर कुछ अधिक नहीं कहना चाहते हमारा सम्बंध इस स्थल पर उनकी कविता से

है न कि उनसे । इस समय तक हिन्दी संसार उनके दो ग्रंथों "अखरावट" और पदमावत् से ही परिचित हैं उनकी तीसरी रचना "आखिरी कलाम" का परिचय शुक्ल जी के इतिहास में मिलता है । कहा जाता है कि जायसी वर्तमान हिन्दी के सबसे पुराने कवि हैं, संदेह नहीं कि सूरदास जी महाराज जायसी से पहले के नहीं बाद के तो अवश्य और उनका रचनाकाल सम्भव है जायसी से पूर्व के हों...... भाषा की दृष्टि से जायसी और चंद का सम्बंध ऐसा ही मालूम होता है जैसे अंग्रेजी में स्पेंसर और चासर का ।[1]

हम्मीर का " हम्मीर हठ " आज भी थोड़ा बहुत वर्तमान ही है वहाँ शोक है कि " महाराणा-पदमनी " के स्थान पर हम हिन्दुओं को आज "पदमावत " ही प्राप्त है ..... शोक कि यदि एक सहृदय मुसलमान के चित्त में इस कथा को अमर कराने की चिंता भी हुई ..... मूल कथा का वेष ही बदल गया । हा ! क्या इसी के बलबूते हिन्दी देशभर पर भविष्य में अधिकार करेगी ? क्या अब भी उसमें इतना वीर्य है इतनी ही प्रवीन भक्ति है स्मरण रखना चाहिये कि शेक्सपियर को हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ और भारतेन्दु के उदय से हिन्दी अब दिनों दिन उन्नति कर रही है .. ... दूसरे सम्बंध में जायसी स्वयं कह गये हैं ---

जेहिं सरवर महँ हंस ना आवा ।
बगुला तहँ जल हंस कहावा ।"

---

1. जायसी मार्च 1913 पृ० सं० 270

हम यहाँ पर इतना ही कहेंगे —

सुकवि कुकवि निरज मति अनुहारी

नृपहिं सराहत सब नर नारी ।।[1]

इतना ही कहना बहुत है कि जायसी सच्ची दृष्टि के कवि न थे "क्षुरस्यधारा निहिता दुरत्यया दुर्ग पंदवत् कवयो वदन्ति ।" कवि (द्रष्टा) न थे भ्रम में पड़ जाते थे उनमें ईश्वर की पहुँच न थी समझ भी थोड़ी थी शायद हृदय ही संकुचित था या हस्त ही शिथिल था जहाँ वीणा की विशाल वाणी की आवश्यकता थी वहाँ वह सारंगी ही टुनटुना कर संतुष्ट हो गये।"[2]

हाँ इतना अवश्य वह कह देना चाहिये कि यद्यपि जायसी ने स्त्रियों की जाति, स्त्रियों के श्रृंगार बारहमासे के विरह आदि नायिका भेद के अनेक अंगों का भलीभाँति वर्णन किया है परन्तु अधिकतर उनमें अश्लीलता अथवा घृणितपन नहीं पाया जाता । पाया क्या जाता है — वर्णन की शिथिलता तथा बेहद बहुतायत, साधारण कल्पना शक्ति इस व्यर्थ के आडम्बर से "पदमावत्" की कदर हमारी दृष्टि में घट गयी ।

" पदमावत् " की बनावट का ढंग तो प्रकट हो चुका अब देखना है कि उसमें जायसी ने कविता कैसी की है हम कह आये हैं कि जायसी में ध्वनि का प्रवेश नहीं है ... उदाहरण में ग्रंथ का श्रीगणेश ही लिजिए ।

" सुमिरउँ आदि एक करता

जें जिव दीन्ह कीन्ह संसारु ।।"

1• मर्यादा, अंक वही पृ0 सं0 271

2• मर्यादा, वही 272

... ईश्वर का वर्णन उन्होंने अवश्य अच्छा किया है परन्तु उनकी चौपाइयों में गोसाई जी की तरह का बल नहीं है गोसाई जी का " बिनुपद चले सुनै बिनुकामा " जायसी के " श्रवण नाहि पै सब कुछ सुना हिया न हियं सब कुछ गुना ....." इत्यादि से मिलाइये पढ़ते ही मालूम हो जायेगा जायसी की रचना कितनी शिथिल है । "[1]

जायसी के विस्तार वर्णन की खूब खुलकर आलोचना की गयी अत: यह टिप्पणियाँ अपनी बात स्वयं कहती है इन पर विशेष किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है यह लेख का पहला भाग था लेखक स्वयं कहता है कि क्रमश: निरीक्षण कराने से ये गुण स्वयं ही प्रकट हो जायेंगे ।

पदमावत् में जायसी ने अनेक प्रकार की वस्तुओं का वर्णन किया है उसने अपने समय की आर्थिक और औद्योगिक अवस्था बहुत अच्छी तरह से प्रदर्शित की है ।

पदमावत के दर्शन से इस मत्तबादशाह ने राणा को छल से कैद किया
" छठ्ये पंचरमांडो दियो सतयें दीन्ह चंदेश "------
सत सँवर नाधत नृपति ले गयो बांध गरेर ।।
अलाउद्दीन के इस घृणित कर्म पर जायसी इतना ही कहते हैं ---

कौन अंध था आग न देखा
× × ×
व्याध भाई राणा कहँ गया ।।

मर्यादा - पृ0 272

कहना नहीं होगा कि जिस कवि ने यही अभिष्ट रखा उसका वीररस विशेष न होगा हिन्दू धर्म की रक्षा, हिन्दू जाति की रक्षा का प्रधानत: उसे ध्यान न होगा .... " पदमावत " के पढ़ने से कम से कम चौपाइयों की क्रमश: उन्नति ही मालूम होती है यही एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें उन्होंने प्रधान रूप से अधिकार पाया इसके बाद तो गोस्वामी जी ने उनको अपना ही लिया " पदमावत " पढ़ करके " रामायण " पढ़ने से गोस्वामी जी की कविता में कुछ और ही आनन्द आने लगता है इतना हमारा दृढ़ विश्वास है कि कोई हिन्दू हृदय जायसी के इस कथन को असत्य न कहेगा :-

जो यह पढ़े कहानी
हम सँवरे दुई बोल ।

हिन्दू जायसी को नहीं भूल सकते ।

राम झरोखे बैठ के सबका मुजरा लेय
जैसी जाकी चाकरी तैसो ताको देय ।।[1]

इन उद्धरणों से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि इस लेख का उद्देश्य न तो विशुद्ध साहित्यिक आलोचना और न सिर्फ पाठक को "पदमावत" के गुणों से परिचित कराना है सबसे पहली पीड़ा तो यही है कि उसे कोई हिन्दू न लिख सका दूसरा हिन्दू की महानता को बीच-बीच में उजागर न किया गया ।

---

1. मर्यादा - दूसरा अंक अप्रैल 1913, पृ0 345

लेकिन साथ ही यह भी सच है कि मर्यादा ही ने " भवभूति का उत्तर रामचरित " की खुली आलोचना और बहस करके खुली मानसिकता का परिचय दिया " मर्यादा में प० मन्नन द्विवेदी बी ए० की भवभूति विषयक लेखमाला •• •• के विषय में हमें यही कहना है कि ऐसे स्वतंत्र विचार वालों की और समालोचना के ऐसे निबन्धों की हिन्दी साहित्य को बड़ी आवश्यकता है उत्तर रामचरित के मुख्यपात्र रामचंद्र है अवश्य ही उनका आदर्श चरित्र दिखाना भी कवि का उद्देश्य रहा होगा पर ऐसा वह कहां तक करसके यह अपनी - अपनी राय पर है। सीता जी से वन में उनके साथ चलने की हामी कर भी चुपके से रामचन्द्र जी का सरक जाना और उन्हें अकेली बन में छोड़ देना क्या साबित करता है --- क्या प्रतिज्ञा भंग का यह ज्वलंत उदाहरण नहीं है यदि सीता निर्वासन के विषय में द्विवेदी जी ने रामचन्द्र जी की निभर्त्सना की है यह सर्वथा उचित है।

उत्तर रामचरित में उक्त उनके चरित्र से मालूम होता है कि या तो उनकी जरा-जरा सी बात पर रो पड़ने की आदत थी और या रोने बिलखने में उन्हें स्पेशल ट्रेनिंग मिली थी •••••मतलब यह है कि उनका यथार्थ स्वभाव भवभूति जरा भी नहीं दिखला सका है।

धोबी प्रसंग के बाद " सीता निवार्सन " के समय रामचंद्र ने बहुत विलाप किया और कहा - यदि मैंने अग्नि परीक्षा अयोध्यावासियों के सम्मुख किया होता तो आज ऐसे दारूण दुःख का मुख न देखना पड़ता" वह वाह-वाह इसमें विलपने की कौन सी बात है ? लंका में तो अग्नि परीक्षा की ही थी

1• मर्यादा नवम्बर - 1912 पृ0 6।

एक बार अयोध्या में कर लेते तो हर्ज क्या था ? अब भी कुछ नहीं बिगड़ा था धोबी अपन सा मुँह लेकर रह जाता है ।

श्री रामनारायण जी ! इन सब बातों के होते हुए भी आपका यह कहना कि रामचंद्र कभी न्यायपथ से बिना विचलित नहीं हुए थे । यह उनकी स्थिति को और भी हास्यापद और नाजुक बनाए देता है । [1] बद्रीनारायण भट्ट ने यह लेख आलोचना-प्रत्यालोचना में लिखा इसके विपरीत इसके अगले पृष्ठ पर शिवरत्न शुक्ल का लेख छपा था ! वर्तमान काल की प्रजा की स्पष्टता सहन करता हुआ सीता का निष्कासन भावी समाज धक्का न लगने के लिए करता हूँ ।"

.... यदि रामचंद्र जी सीता का त्याग न करते तो सभी लोग अपनी पतित स्त्रियों को पुन: ग्रहण करते कलंकता अथवा निष्कलंकता तो प्रच्छन्न वस्तु है इसका साधन सब कर लेते ।[1]

इसलिए रामचंद्र जी ने निष्कलंकता की छूट न रख समाज को यह दिखला दिया कि ऐसी स्त्री जो पराये घर में विशेषकाल तक रही हो पुन: ग्रहण नहीं की जा सकती है जिस प्रकार जापान में कुछ वीर पंगुओं ने बाल्टिक फ्लीट के नाश करने में जापान देश को बचाने के लिए जानबूझ कर जल मग्न हो प्राण दे दिये थे इस प्रकार निष्पाप सीता का त्याग भी हिन्दू समाज की रक्षा कर रहा है । "[2]

1· मर्यादा नवम्बर - 1912 पृ0 61
2· वही पृ0 62

इस प्रकार "मर्यादा" ने एक ही अंक में एक ओर राम के कर्मों की कड़ी आलोचना को छापा और साथ ही समर्थकों की यही उसकी निष्पक्षता थी किसी एक को पढ़कर उसकी आलोचना करना उसके साथ अन्याय करना है।

सीता निष्कासन को लेकर दिसम्बर 1912 में छपी एक और आलोचना दो टूक बहस सिर्फ रोचक नहीं विस्मयकारी सुखद अनुभूति है भट्ट जी के लेख पर अगले अंक में तिवारी जी ने आलोचना लिखी उसी का प्रत्युत्तर कुँवर महेन्द्रपाल सिंह लिखते हैं " कि तिवारी जी ने अपने लेखको जामे से बाहर से बाहर हो गये " " मनमानी हाकीं है अफसरी और महरवां " आदि शब्दों से विभूषित किया है मुझे इन शब्दों को पढ़कर कुछ आश्चर्य नहीं होता है क्योंकि मैं जानता हूँ कि लकीर के फकीर हिन्दुओं के देश में व्याप्त अंधविश्वास और अंधभक्ति के सामने तर्क या बुद्धि की दाल नहीं गल सकती तिवारी जी भट्ट से पूछते हैं --- भवभूति को फेल करने वाले आप कौन ? .... क्या मैं भी तिवारी जी से पूछ सकता हूँ कि भला उनको पास करने वाले आप कौन ? पर इस कोरी " आप कौन ? आप कौन ? से कुछ न मतलब निकलता देखकर इसको मैं यहीं खत्म करता हूँ ।

आगे आप बड़े गर्व से कहते हैं कि क्या न्यायी राजा नीच-ऊँच, काले गोरे आदि विभेद मानते हैं ? नहीं । आप कहते हैं " नहीं" पर मैं कहता हूँ कि जिसको आप आदर्श न्यायी समझते हैं वे ही ऐसे भेद को मानते थे और इसीलिए मैं उनको न्यायी नहीं मानता जरा शम्बूक बध का ध्यान कर लिजिए तब कहिये कि रामचंद्र जी ऊँच-नीच काले गोरे का भेद मानते थे या नहीं ।

देखिए आत्मघात करने की चेष्टा करते सीता जी क्या कहती हैं; हा आर्यपुत्र कुमार लक्ष्मण एकाकिनी मन्दभागिनी मशरणामप्ण आसन्न प्रसव वेदना हताशांप्वापदा भाम भिलषन्ति

साहमिदानी मंद भागिनी भागी स्यात्भार्थं निक्षेप्स्यामि

अपने को अबोध, देहाती तथा गंवार बतलाने वाले तिवारी जी क्या भट्ट जी के " उत्तर रामचरित " वाले लेख पर विचार करेंगे ? मुझे पूर्ण विश्वास है कि भट्ट ने वही राय दी है जो किसी पक्षपात रहित मनुष्य की " उत्तररामचरित पढ़ने पर होती है रही सम्मति की बात तो मेरी राय भी है कि निम्नलिखित विषय पर सम्मति ली जानी चाहिये । यथार्थ में निरपराधिनी साध्वी सुशीला और विवाहिता पत्नी को लोगों के मनोरंजन के लिए निकाल देना ठीक है या नहीं ? चाहे वह रामचंद्र के द्वारा किया जाय या किसी द्वारा ।"[1]

संख्या चार में फिर उस बहस की अगली कड़ी में एक और लेख छपा " सबसे " पहले हम " सीता के त्यागे जाने वाली घटना पर विचार करते हैं "बाल्मिकी रामायण " को 6 काण्ड ही बनाए हैं अन्त में जो श्लोक है उनसे स्पष्ट ही रामायण की समाप्ति ज्ञात होती है यथा --

कुटम्ब वृद्धि धन धान्य वृद्धि

स्त्रिय श्च मुख्या: सुख युक्तम श्च ।

1• मर्यादा-दिसम्बर 2 1912, पृ0 129

श्रुत्वा शुभं काव्यमिदं   महार्थ

प्राप्तोति सर्वा भुविवार्थ सिद्वम ।

फिर उत्तर काण्ड कैसे हो सकता है यह सब कहने से हमारा मतलब यह है कि उत्तर कांड बाल्मिकी रचित नहीं है सीता त्याग वाली जो घटना है वह भी उत्तर खण्ड में है ..... अत: बाल्मिकी के नाम से यह घटना सिद्ध नहीं हो सकती .....।"[1]

" भवभूति का उत्तर रामचरित " इस पर हुई बहस न सिर्फ पाठक लेखकों के ज्ञान का परिचय देती है इससे न केवल सम्पादक की निष्पक्षता उजागर होती है वरन लेखकों की बहस से यह अहसास होता है कि उस समय राम या किसी भी पुराण या धार्मिक ग्रंथों पर खुलकर साहित्यिक बहस की जा सकती थी कृष्णाकांत मालवीय जी के सम्पादन में सबसे ज्यादा इस प्रकार की उत्तेजक बहसों को स्थान मिला -- शेखर कवि पर प0 शिवाधर ने एक लेख लिखा शेखर कवि की थोड़ी बहुत चर्चा पहले लेखों में होती रही -- सर्व साधारण में इनके ग्रंथों का न तो अधिक प्रचार था न प्रचार के अभियान से वह बनाए गये थे हिन्दी संसार में अभी तक वह समय नहीं आया है जब उसके सच्चे साहित्य के लेखकों की कदर होने लगेगी ।

ढाई सौ वर्ष पहले विलायती साहित्य में ठाकुर जौनसन ने जो प्रत्यक्ष कर दिखायी थी उसके लिए हिन्दी साहित्य आज भी खड़ा ताक रहा है ।

---

1. मर्यादा - फरवरी 1913 पृ0 25।

जितना भारत में शिक्षा का प्रचार होगा उतना ही हमारा साहित्य प्रेम बढ़ेगा देश को शिक्षा से वंचित रखना हमारे साहित्य की गर्दन पर छुरी चलाना है ब्राह्मणों वैश्यों से लेकर भंगी कोरी और चमारों तक हिन्दुओं में कोई जाति ऐसी नहीं रही जिसमें अच्छे कवि और साहित्य सेवन उत्पन्न न हो ।

शेखर कान्यकुब्ज से तुलसी भूषण आदि दूसरे कान्यकुब्ज कवियों के समान इनमें भी भक्ति भरी हुई थी इनसे भी वीर रस टपकता था वह श्रृंगार रस से कोरे न थे वह ऐसे रत्न निकालकर लाये हैं जो बिहारी आदि को भी वहाँ आठो पहर पड़े रहा करते थे दृष्टिगोचर नहीं होते थे ।

लेखक ने शेखर कवि की तुलना बिहारी और जायसी से करके शेखर कवि को अधिक महान और मर्मज्ञ सिद्ध किया । अलाउद्दीन की तुलना जायसी ने सूरज से की है-देश दुनिपति दिल्ली तखत नसीन

दू जो सूरज सो तपै शाह अलाउद्दीन'

जिस सूरज की उपमा की मलिक मुहम्मद जायसी ने टाँग तोड़ दी है उसको शेखर ने कितने स्वाभाविक तौर से दिखाया है मानो कोई अतिशयोक्ति को धोखे में ही भूल जायेगा ।

कालते कराल में उलाउद्दीन पातशाह
ताको चोर चारों ओर राखिलो सक्त है

सम्पादकीय सरोकारों में " मर्यादा " एक महत्वपूर्ण और साथ ही प्रशंसनीय बात यह रही है कि इसके सम्पादक अपने लेखकों की अभिव्यक्ति की

पूर्ण स्वतंत्रता देते थे भारत भारती के संदर्भ में श्रीयुत उद्भट ने आलोचना लिखी जो दो अंकों में प्रकाशित है इसमें उन्होंने इसकी भाषा और भाव दोनों की आलोचना लिखी उसमें उन्होंने लिखा इसी प्रकार " होंगे न दोनों नेत्र प्यारे एक से किसको भला ?" सर सैयद अहमद की उक्ति प्रसिद्ध है । रईसो के वर्णन में आपने जो धिक ता न धिक तानू धिगेता-काव्यमति सततं कीर्तिनस्थो भृदंग का भाव है " इस पर लेखक की फुट नोट में टिप्पणी है कि हम समालोचना की इस उक्ति के कायल नहीं हैं बड़े से बड़े कवियों की कृतियों में अन्य कवियों के भावों की झलक आ जाती है । - स0 म0 [सम्पादक महोदय] और भाग संख्या 5 में एक और टिप्पणी है —" भारत भारती की समालोचना प्रकाशित करने का हमारा विचार नहीं था किन्तु एक पूज्य और प्रतिष्ठित सज्जन के आग्रह से अपने स्तम्भ में भारत भारती की समालोचना प्रकाशित करने पर विवश हुए हैं इसके पहले भी हमारे उस भारत भारती की समालोचनाएं आयी थी ।" मर्यादा में लाला लाजपत राय के काफी लेख छपते थे जिसमें 1913 नवम्बर में सम्पादक महोदय की एक टिप्पणी छपी --" हमें कुछ खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि हमारे सनातनी धर्मी और आर्य समाजी पाठक "मर्यादा" से नाराज हो गये हैं कारण यह कि इसमें परम देश भक्त लाला लाजपत राय के समाज सम्बंधी कुछ लेख प्रकाशित हुए । हम अपने भाइयों को सविनय यह बतला देना आवश्यक समझते हैं कि " मर्यादा " न सनातन धर्मी है और न आर्य समाजी यदि सनातन धर्मियों में दोष है तो उन्हें प्रकट करेगी और

1· मर्यादा,भारत-भारती -श्रीयुत उद्भट पृ0 118, भाग संख्या 2 -सं0 3
2· वही वही

यदि आर्य समाज में दोष है तो उतनी ही प्रबल रीति से उनका विरोध करेगी ।..... अत्याचार चाहे ब्राहमण के हों या समाज के और चाहे ब्राह्मणों के हो या फिर ब्रिटिश गवर्नमेंट के, उनमें भेदभाव की दृष्टि न रखी जायेगी हाँ इतना अवश्य है कि हम किसी सम्प्रदाय को साम्प्रदायिक दृष्टि से कुछ न कहेंगे और मत मतान्तर या धार्मिक झगड़े के लेखो का मर्यादा में स्थान भी न देंगे...... हम आशा करते हैं कि हमारे यानी सनातन धर्मी और आर्य समाजी भाई इस कारण से मर्यादा पर से अपना प्रेम न हटावेंगे ।

.... "मर्यादा" अपने चतुर्थ वर्ष में प्रवेश करती है कि परमपिता की दया से और अपने ग्राहको की सहायता से वह अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त करेगी ।

शांति ! शांति ! शांति ! 1913नवम्बर !

अगस्त 1915 के सम्पादकीय में " अभ्युदय प्रेस से जमानत की माँग "

अभ्युदय प्रेस से जमानत की माँग और माननीय मालवीय जी (मालवीय जी इस प्रेस के मालिक थे - इससे तीन पत्र निकलते थे) का उत्तर अभ्युदय प्रेस के सन्दर्भ में गवर्नमेंट ने माननीय मदन मोहन मालवीय जी से जो जमानत की माँगी थी उसके उत्तर में उन्होंने नीचे लिखा पत्र गवर्नमेंट को भेजा ।

अभ्युदय के 26 जून 1915 के अंक में प्रैंच काले सैनिक और ब्रिटिश काले सैनिक में भेद ? शीर्षक से लेख छपा था ।

मालवीय जी ने चीफ सेक्रेटरी को लिखा कि मुझे खेद है कि ऐसा लेख

जिसके विषय में गवर्नमेंट ने इतना भारी ऐतराज किया है अभ्युदय प्रेस में छपा पर उसका उद्देश्य था कि सिपाही अंग्रेज कहीं बेहतर प्रतिभावान हैं- इस बात को विशेष ध्यान में रखकर कि इस समय एक बड़े युद्ध में साम्राज्य निमग्न होता और जो बहुत शीघ्र समाप्त होता नहीं दिखाई देता अभ्युदय के सम्पादक को भी यह प्रतीत हुआ कि गोल्डकास्ट के पत्र का यह कथन -- कि हमारे सम्राट के अफ्रिकन सिपाही बहादुरी साहस और सूझ के गुणों में फ्रेंच अफ्रिकन सिपाही के बराबर क्यों नहीं है उसकी यह सम्मति कि उसका कारण दूर किया जाना चाहिये ये दोनों बातें गवर्नमेंट के ध्यान में लाने योग्य है अनुवाद के कारण वाक्यों का गलत अनुमान लगाया गया कि हमारा उद्देश्य नहीं था ऊपर लिखी बातों को ध्यान में रखकर उसे दु:ख के साथ कहना पड़ रहा है कि बिना जमानत मांगे प्रान्तीय गवर्नमेंट से जो जमानत करने की सूचना मुझे दी है वह बिल्कुल अन्याय युक्त है । और मैं अपने साथ न्याय करते हुए उसका पालन नहीं कर सकता प्रेस एक्ट के अनुसार प्रान्तीय सरकार के निर्णय के विरुद्ध मुझे कोई दूसरा मार्ग मेरे लिए खुला है अर्थात प्रेस को बंद कर दूं और जहाँ तक शीघ्र हो सके तो उसको बंद कर दूं ।

मैं जिले मजिस्ट्रेट को सूचना देता हूं अभ्युदय प्रेस मंगलवार को बंद हो जायेगा ।

प्रयाग

8 अगस्त 1915

भवदीय इत्यादि
मदन मोहन मालवीय

इसका उत्तर भी छपा -

माननीय प0 मदन मोहन मालवीय,

महाशय मुझे आपके 8 अगस्त के पत्र लेफ्टिनेंट गर्वनर " अभ्युदय" के लेख की व्याख्या स्वीकार नहीं कर सकते उसका मूल रूप चाहे जो रहा हो उसको उसके वर्तमान हिन्दी स्वरूप में पढ़ना होगा इसी तरह समझना होगा जैसा किसी साधारण हिन्दी पाठक को उसको देख कर बोध होगा।

पिछले 12 महीनों में अभ्युदय में प्रकाशित कई लेख आपने दिखलाए हैं जिनमें अंगरेजों के कामो की प्रशंसा और जर्मनों के आचरणों की निंदा की गई है साथ ही ऐसी कवितायें भी दिखाई जिनमें हिन्दुस्तानी सिपाहियों को राजभक्ति और वीरता को बढ़ावा दिया गया । अभ्युदय को ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति से किसी समय न डिगाना चाहिये ।

कानूनी कार्यवाही की आवश्यकता हुई इस बात से सर जेम्स मेल्टन को उतना दुख हुआ जितना आपको हुआ अब उन्हें संतोष है कि भविष्य में अभ्युदय का संचालन आप अपनी निरीक्षणता में करेंगे .....। ऐसी परिस्थिति में आपको सूचित करता हूँ कि प्रान्तीय सरकार जमानत की माँग परित्याग करेगी तदनुसार 30 जुलाई को नोटिस वापस ले लिया जायेगा ।

आपका
चीफ सेक्रेटरी

मालवीय जी को धन्यवाद,

1· अगस्त 1915 - सम्पादकीय

जब "मर्यादा" प्रारम्भ हुई तब स्वराज्य संघर्ष के साथ जनता में सरकारी नौकरियों में उंचे पद प्राप्त करना एवं राजकाज में अपनी उपस्थिति दर्ज कराना ही मुख्य उद्देश्य था पर धीरे-धीरे अंग्रेजों की नीतियों के तहत और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राजभक्ति, देश भक्ति में बदलनी शुरू हुई " मर्यादा " के आखरी पड़ाव तक तो अंग्रेजों का काफी खुलकर विरोध होने लगा था ।

" मनुष्य में मनुष्यत्व कायम रखने " के लिए ही यह आवश्यक था कि पराधीनता और विदेशी शासन का अंकुर भी बाहर फेंका जाय इस उद्देश्य तक मर्यादा को अपने पाठको को धीरे-धीरे पहुँचाना था ।

सन् 1915 में " जर्मन भूत " प्रयाग से एक पम्फलेट छपा था पायोनियर कार्यालय में जिसमें लिखा गया था कि भारतवर्ष में असंतोष अराजकता आदि फैलानेमें जर्मनी का हाथ है बर्लिन गुल ब्यूरो ने मिश्र और भारत के देशी समाचार पत्रों को अराजकता का प्रचार करने के लिए उत्तेजित किया।

तथ्यों ने भारतीय युवकों को जूट और रुई में आग लगाना सिखाया और हत्या करने में उन्हें निपुण बना दिया । भारत वासियों की राजभक्ति पर कीचड़ फेंकने के लिए मानो इतना ही काफी न था इसीलिए आगे चलकर पम्फलेट में कहा गया कि जर्मनी ने रुपये से भारतीय कांग्रेस कमेटी की सहायता स्वरूप उसे स्वराज्य के निमित्त खड़े होने को उत्तेजित किया । साधु । साधु ! इससे दूर जाने में शायद उनकी कल्पना शक्ति असमर्थ थी ।"[1]

1· 1915 ‖ जर्मनभूत ‖ अंक पृ0

इसी में दो महत्वपूर्ण बातें और छपी अफ्रिका में गांधी जी के आगमन पर " गांधी का स्वागत " दूसरा कांग्रेस के मद्रास में जो अधिवेशन हुआ एक दृष्टि से उसको पूरी सफलता हुई संसार व्यापी युद्ध के सम्बंध में कांग्रेस ने भारतीयों की राजभक्ति पर समुचित जोर दिया बाबू राजेन्द्रनाथ बसु ने सभापतित्व किया । फरवरी 1915 में एक लेख छपा जिसका सार था - ब्रिटिश सरकार इन दिनों प्रबल शत्रु से युद्ध में व्यस्त है राजभक्ति भारतवर्ष तन, मन, धन से साम्राज्य की रक्षा के लिए व्यग्र हो रहे हैं यथा साध्य इस आपत्तिकाल में सरकार की सहायता करना हमारा परम धर्म है परन्तु अपने कर्तव्य भुला देने से न चलेगा ।" लेकिन धीरे-धीरे इस राजभक्ति से मोह टूटने लगा क्योंकि अंग्रेज भारतीयों को हर जगह एक मोहरे की तरह इस्तेमाल कर रहे थे और भारतीयों का मोह भंग होने लगा था ।

अगस्त 1917 में लेख छपा -- कौन कहता है कि भारत स्वराज्य के योग्य नहीं ।" लेकिन यहाँ यह चेतना सिर्फ इस आकांक्षा एक है कि हिन्दू नहीं चाहते कि अंग्रेज यहाँ से सर्वदा के लिए चले जाये वे तो यही चाहते हैं कि हिन्दू नेताओं को भी भारत के राज्य करने में सम्मिलित करके उनकी सम्मति से राज्य प्रबन्ध किया जाय ।

"विद्यार्थी और होमरूल शासन " इसमें कहा गया कि विपत्ति के समय नागरिक की सच्ची शिक्षा यही है कि वे अपने को देश की सेवा में अर्पित कर दें जुलाई 1917 में अलग-अलग नेताओं के विचार एक लेख में प्रकाशित हुए इसमें बताया गया कि कभी-कभी इस बात की आवश्यकता होती है कि हम यह बताएं

कि हम स्वराज्य क्यों चाहते हैं क्रमशः हमारी स्वतंत्रता कम होती जाती है अनेक कानूनों के अतिरिक्त 1910 का प्रेस एक्ट कानून जिसके कारण भारतवर्ष के समाचार पत्रों की स्वतंत्रता विलुप्त हो गयी । मद्रास के हाई कोर्ट ने साफ-साफ कह दिया कि वे शासक समुदाय के नियम के विरुद्ध कार्यों से प्रेसों की रक्षा करने में असमर्थ हैं ।

1910 से "मर्यादा" आरम्भ हुई थी यह वह समय था कि नवशिक्षित वर्ग एक नयी विचारधारा और अपने होने के अहसास के साथ प्रगति की दुनिया धारा में प्रवेश कर रहा था । यह उस समय की परिस्थितियों में यह बात बिल्कुल साफ है कि सीधे-सीधे आप अंग्रेज सरकार को गलत नहीं ठहरा सकते थे । "मर्यादा" के समय में भी यही नीति थी लेकिन भारतीयों को धीरे-धीरे स्वराज्य की आवश्यकता महसूस होने के साथ उसके विचारो के प्रकट करने में तीखेपन के अहसास के साथ ही अंग्रेज सरकार ने " प्रेसएक्ट " लगा दिया, और उसका उल्लंघन होने पर सफाई देनी पड़ती थी - मर्यादा जब शुरू हुई थी तो उसमें राजभक्ति का अहसास देखने को मिलती है लेकिन यह अहसास अस्पष्ट है शुरू से ही "मर्यादा" में देश भक्ति पूर्ण रचनाएं छपती थी पराधीनता के दुष्परिणाम पर लेख छपते —" "परतन्त्रता"—" मन्ये ते परमेश्वरा: शिरसि

ये: बद्धो न सेवा, जलि: " ।

वर्तमान में पराधीन देशों की स्थिति से यह साफ प्रगट होता कि पराधीनता कैसी हानिकारक होती है । इससे अधिक हानिकारक वस्तु संसार में कोई भी नहीं है । .... हेगल नाम के एक पश्चिमीय महात्मा ने धर्म की

व्याख्या करते हुए कहा था कि धर्म स्वतन्त्रता का पर्यायवाचक है । इसमें संदेह नहीं कि इस कथन में महात्मा ने धर्म का गूढ़ मर्म कह डाला है । वास्तव में धर्म में है क्या ? हम धर्म उसे ही कहते हैं जिससे मनुष्य का पशुत्व दूर हो जाय ।"[1] यह सम्पादकी टिप्पणी है इसमें प्रत्यक्ष रूप में यह नहीं लिखा है कि हमें परतन्त्रता से मुक्त होना है पर आशय यही है लेकिन स्पष्ट रूप में असहमति स्वराज्य आंदोलन की शुरूआत के समय से दिखने लगती है - कृष्णाकांत मालवीय का मर्यादा के सम्पादक पद से विदा लेते समय यह कथन कि हमारे जनरल गांधी ने घोषणा कर दी है कि सेना में भर्ती शुरू हो गयी है - सम्पूर्णानन्द के जेल जाने पर एक अंक सम्पादन प्रेम चंद द्वारा करना यह इस बात को स्पष्ट करता है इस समय सरकार का विरोध होने लगा था । दूसरी ओर एक और बात जो स्पष्ट होती है वह यह है कि इसके सम्पादक स्वाधीनता आंदोलन से प्रत्यक्ष रूप में जुड़े थे ।

"मर्यादा" " अभ्युदय " प्रेस से निकलती थी और इसके मालिक संस्थापक मदन मोहन मालवीय थे -- मदन मोहन मालवीय और महात्मा गांधी दोनों एक दम अलग तरीके से अंग्रेजों के विरोध में थे दोनों की नीतियों में भेद था लेकिन मदन मोहन मालवीय जी के भतीजे और "मर्यादा" के सम्पादक कृष्णाकांत मालवीय - गांधी जी के समर्थक थे गांधी जी के आह्वाहन पर सम्पादक पद छोड़ कर जेल जाना गांधी जी के द्वारा लिखित अनेक महत्वपूर्ण लेख और

1· मर्यादा नवम्बर -1912, पृ0 96

उनके समर्थन में अनेक लेख छापना यह बातें यह स्पष्ट करती हैं कि वह मालवीय जी की अपेक्षा गांधी जी की नीतियों के समर्थक थे । कांग्रेस के होने वाले अधिवेशनों और कांग्रेस के इतिहास के साथ उसकी उपलब्धियों पर " मर्यादा" में समय - समय पर लेख छपते थे यह पत्रिका का कांग्रेस की ओर झुकाव को भी स्पष्ट करता था । 1912 में "शोक" नाम एक सम्पादकीय टिप्पणी छपी --" यह सुनकर किस भारतवासी का हृदय दुःख से अत्यंत विह्वल न होगा कि उनके प्रसिद्ध जन्म दाता महामति मि० ह्यूम ने गत 31 जुलाई को अपनी जीवन लीला समाप्त करके चिरकाल के लिए समाधि ले ली है .... भारत वर्ष में इस समय जो स्वावलम्बन और जातीयता का नवीन भाव दिखायी दे रहा है उसका बीज सन् 1885 में मि० ह्यूम ने ही शिक्षित भारतवासियों के हृदय में वपन किया था ..... आज के दिन हम लोगों में जो आत्मशासन प्राप्त करने को उच्च आशा और अभिलाषा उत्पन्न हुई है वह कांग्रेस की ही बदौलत है ।"[1] इसी तरह अनेक कविताएं और अनेक लेख इस बात को बार-बार कहते थी कि हमें स्वराज्य चाहिये होमरूल और राजकोष स्वराज, स्वराज होगा तो भारत अपने देश में उचित अर्थ व्यवस्था का उद्धार कर सकेगा । अनेक कविताएं उदाहरण के तौर पर देखी जा सकती हैं जो कि समय-समय पर " मर्यादा" में छपती रहती थी

जुलाई 1917

धिक जीवन पर बस कैसे हूं

सधन समान फकीर

---

1. मर्यादा 1912 अगस्त, पृ० 229

कसर पराधीन थे हमसब

मनव आपको बीर

× × ×

मेरे देश -

मेरे भारत देश

ऐसा क्यों है तेरा वेश

क्यों मां क्यों तु शुष्क बदन है

क्यों है तेरे रुखे केश ।

1917 जुलाई में दादा भाई नारोजी ने लिखा -
देव तुल्य सच्हील अंगरेजों की अपेक्षा अपने देश के भ्रष्ट लोगों से शासित होना भारत वासियों के लिए अच्छा है

1998 में एक और कविता छपी " व्यर्थ है " शीर्ष - से --

भीखवश निज स्वत्व को

यधपि लिया तो क्या लिया

"मर्यादा" में महात्मा गांधी ने अपनी व्यस्तता के बीच "मर्यादा" में लेख लिये उन पर छपे लेखों की संख्या किसी अन्य नेता पर छपे लेखों से ज्यादा है हमारी शिक्षा प्रणाली में त्रुटियां" इस विषय से लेकर सितम्बर 1921 में उनकी गिरफ्तारी पर लेख छपे " शासन सुधार स्कीम " में श्री गांधी के विचार " निपुणता की दृष्टि से यह रिपोर्ट कांग्रेस लीग की योजना से उत्तम है मैं नम्र किन्तु जोरदार शब्दों में कहता हूं कि भारत वासियों के हितो के सामने

ब्रिटिशों के हित की बात गौण समझी जायेगी और जहाँ वे भाप की उन्नति के विरोधी होंगे वहाँ उन पर जोखिम आयेगी । इण्डियन सिविल सर्विस की निपुणता और कर्तव्यपरायणता की तो प्रशंसा की जाती है उसमें हम भी शामिल हो सकते हैं । सारांश यह कि कांग्रेस लीग की मांग के अनुसार सिविल सर्विस में सैकड़े 50 स्थान मिलने के लिए हमें जोर देना चाहिये।" उन पर और उनके द्वारा लिखे गये सभी लेख महत्वपूर्ण हैं पर दो लेखों का उल्लेख करना आवश्यक है । 1920 में एक लेख " यदि मैं पकड़ा जाऊँ -- मैं उन्होंने लिखा, " मेरे मन में सदा यह विचार रहता है कि यदि मैं पकड़ा जाऊँ तो लोग क्या करेंगे -- मेरी गिरफ्तारी से पागल बन जाना मुझे कलंक लगाने जैसा होगा ।

जनता की शांति का अंदाजा सरकार मुझे गिरफ्तार करके ही लगा सकती है । यदि मैं गिरफ्तार हो जाऊँ तो लोगों को क्या करना चाहिये -

लोग पूर्ण रूप से शांत रहें ।

कोई आदमी सेना या दूसरी सरकारी नौकरी न करें जिन मतदाताओं ने अभी तक कुछ निश्चय न किया हो वे यह निश्चय करें कि कौंसिलों में प्रतिनिधि भेजना पाप है यदि लोग ऐसा निश्चय करके उसे कार्य में परीणित करें तो स्वराज्य के लिए लम्बे समय तक प्रतीक्षा न करनी पड़ेगी ।

इस समय तक गांधी जी काफी जन प्रिय और प्रसिद्ध हो चुके थे कि उन्हें इस तरह के लेख लिखने पड़े ।

स्वदेशी सूत और कपड़ा (केसरी से) मर्यादा 1921 में -

राष्ट्रीय सभा कांग्रेस ने स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करके परदेशी

वस्तु का यथा सम्भव बहिष्कार करने का प्रस्ताव पास किया उन्होंने कहा देश में रूई भरपूर है चरखे पर सूत निकालो । इस पर सम्पादकीय में टिप्पणी लिखी गयी - स्वदेशी सूत और कपड़ा शीर्षक लेख की ओर हम पाठकों का विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करते हैं । क्योंकि उसमें दर्शाई गई युक्तिपूर्ण और व्यवहारिक बातों पर हमारे देशवासी ध्यान देकर उनको अमल में लाने का संकल्प करें तो देश एवं देशवासियों का कल्याण होगा ।"

एक अन्य लेख में कहा गया कि हिन्दुओं को अंधभक्ति छोड़ कर हृदय मष्तिष्क और बाहुबल इन तीनों का समानान्तर जाति की उन्नति को सबसे ज्यादा मनुष्य एवं देश के विकास पर ध्यान देना चाहिये ।

कार्तिक 1962 में मार्डन रिव्यू से एक लेख छपा - स्वतंत्रता की रक्षा 12 अगस्त के पायनियर में एक रूपक द्वारा यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया कि इंगिलस्तान को आवश्यकता पड़ी तो अंग्रेज सिपाही भारत से चले जायेंगे और स्वराज्य पाकर भी आप अपनी स्वतंत्रता की रक्षा न कर सकेंगे ।

इसका उत्तर एक बातचीत से मिल जाता है जो इसी विषय पर एक बार कर्नल जेम्स वेजवुड और महात्मा गांधी में हुई थी --

कर्नल - यदि हम चले जायेंगे तो तुम्हारे यहाँ अराजकता फैल जायेगी ।

महात्मा जी - विदेशी शासन से अराजकता अच्छी है ।

कर्नल - यदि हम चले जायेंगे तो अमीरलोहार हस्तगत कर लेंगे होल्कर दिल्ली दबा लेंगे ।

महात्मा जी - यदि हम अँग्रेजी राज का बल तोड़ सकेंगे तो कोई अन्य शासन हमारा सामना नहीं कर सकता ।"

"मर्यादा" के एक लेख में तिलक और गांधी दोनों की विशेषताएं बताते हुए तुलना की गयी - इसमें लम्बी बहस तुलना के बाद गांधी जी को ज्यादा महत्वपूर्ण सिद्ध किया ।

गांधी और तिलक की तुलना ---

वर्तमान काल के समकालीन महापुरुषों की तुलना करना कठिन काम है भारतीय रंगभूमि पर ये युगल मूर्तियां इतने दीर्घकाल से सुपरिचित हैं कि अब उनके गुण दोषों के सम्बंध में कोई बात अप्रकट नहीं है -- यद्यपि महात्मा गांधी की अवस्था अधिक नहीं है, तथापि इन 20 वर्षों में उन्होंने शतायु का काम निपटा डाला है ।"[1]

दोनों महानुभाव भारत के अनमोल मणि हैं यह बात इनके लिए अत्युक्ति नहीं है कि भारतीय नेताओं में इन्हें मस्तक झुकाने अथवा इनके चरणों में गिरने वालों सज्जनों की संख्या अधिक है । महात्मा गांधी में सन्यासी होने के कारण शारीरिक दुःख सहन करने की शक्ति अधिकांश स्वभाविक और देश में शिक्षा बढ़ाकर मान्यवर तिलक की अपेक्षा बहुत बढ़ गई है । रेलवे के तीसरे दर्जे की मुसीबतवाली मुसाफिरी - बैठे-बैठे जागरण करना आदि -- तिलक महाराज का स्थूल और मधुमेह से पीड़ित शरीर सहसा सहन नहीं कर

----

1. मर्यादा, नवम्बर - 1918 , पृ0 217,218

सकता इसी कारण वे फर्स्ट क्लास या पहले दर्जे में सफर करते हैं ।

सादगी आवश्यकताओं की काट छाँट को महात्मा गांधी ने एक प्रधान प्रश्न उद्योग अथवा विग्रह का एक अस्त्र बना दिया है लोकमान्य तिलक ने उसे केवल सुभीते के लिए और कदाचित राजनीति का एक अंग समझकर ग्रहण किया है ।"[1]

लोकमान्य तिलक जब किसी धार्मिक प्रश्न का विवेचन करते हैं तो वे उसे भी यत्र किंचित राजकीय रंग में रंग देते हैं महात्मा गांधी धर्म को राजनीतिका महान अंग मानते हैं तो लोकनायक उसे किसी एक अंश में मानते हैं ।

लोक मान्य तिलक अहं भाव को एक प्रकार की राजकीय आवश्यकता समझ कर ग्रहण करते हैं, महात्मा गांधी राजसी वस्तु को क्षण भर के लिए सात्विक न मानकर उसे अस्वीकार करते हैं ।

लोक मान्य तिलक कृष्ण, चाणक्य और डिजराएली के विशेष भक्त हैं, तो महात्मा गांधी विदुर, युधिष्ठिर और मेजिनी अथवा ग्लेडस्टन के शिष्यों से बढ़कर हैं । इनमें श्रेष्ठ और कनिष्ठ कौन है इस बात का विवेचन करना इस लेख के हेतु नहीं है हमें तो यहाँ केवल तुलना करके भेद प्रदर्शित करने का प्रयत्न करना था और वही हमने यथा शान्ति किया ।"[2]

"मर्यादा" हिन्दू सांस्कृतिक विमर्श की पत्रिका थी हिन्दूवादी राज-

----

1. मर्यादा, नवम्बर 1918, पृ0 217,218
2. वही वही

नीति की नहीं इसीलिए वह तिलक से कहीं ज्यादा गांधी जी के निकट थी । यहाँ गांधी जी को तिलक से ज्यादा महत्वपूर्ण सिद्ध करने की कोशिश का यही निहितार्थ है । फरवरी -1919 में " रोलट बिल और सत्याग्रह" नाम से सम्पादकीय टिप्पणी छपी इस समय तक सम्पादक कृष्णाकांत मालवीय ही थे इसके बाद उन्होंने "मर्यादा" से अवकाश ग्रहण कर लिया। इस लेख में -- "राष्ट्रीय स्वतंत्रता को नष्ट करने वाले और उसे इस बीसवीं शताब्दी में एक आत्मविस्मृत जाति बनाए रखने के लिए देश की कार्यकारणी जिन दो बिलो अर्थात [1] क्रिमनल एमेन्डमेंटबिल और [2] इण्डियन क्रिमनल लॉ इमेजिन्सी क्वर्सीबिल का व्यवस्थापिका सभा द्वारा - भारत सरकार 30 करोड़ भारतवासियों को ललकारा है इस दर्द का उत्तर देने के लिए दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रही वीर इंडे के नीचे खड़े न होंगे तो उन्हें समाधि ले पड़ रहना चाहिये और समाधि के ऊपर एक पत्थर के साईन बोर्ड पर लिखवा देना चाहती है ।

यहाँ एक मुर्दा जाति पड़ी है ।

बहुत ठीक हमारा भी यही मत है ।

"मर्यादा " में हर विषय पर बेबाकी से लिखती थीं चाहें वह सामाजिक कुरीतियों पर चोट हो या राजनीति पर व्यंग्य उसने अनमेल विवाह पर काफी लिखा 70 वर्ष का वृद्ध और 9 वर्ष की कन्या इस तरह के विवाह पर असहमति जताते हुए रोष प्रकट किया उसे चित्रों सहित प्रकाशित किया ।

जलियाँ वाला कांड की " मर्यादा" ने बहुत कड़ी आलोचना नहीं की मालवीय जी के द्वारा लिखित एक लेख में उन्होंने सरकार से इस कांड पर स्पष्टी-

करण मांगा । पर उसे बहुत ज्यादा स्थान नहीं मिला । मर्यादा के एक लेख में श्रीमती ऐनी बेसेन्ट की आलोचना हुई " श्रीमती ऐनी बेसेन्ट -- 1875 में वे भारत आयीं और उन्होंने हिन्दुओं को हिन्दू धर्म समझाने का दावा किया उसी समय से सनातन धर्मी और आर्य समाजी हिन्दू उनके साहस पर हँसने और ताना मारने लगे -- हमारे धर्म की छोटी से छोटी बात में गूढ़ रहस्य आपको सुनाई देने लगे हिन्दू धर्म में कोई भी ऐसे क्षुद्रातिक्षुद्र संस्कार नहीं जो अपूर्व और सार्थक न हो । जिसको कट्टर से कट्टर हिन्दू हाल की पैदा हुई बुराईयां समझता था उसे आपने एक परमोज्ज्वल सिद्धान्त साबित कर दिया । वे हिन्दुओं से भी बढ़कर हिन्दू धर्म का पक्षपात करने लगी ।

पर सच्चे सनातनी उनसे सदा झिझकते रहे, उनके आचारीपने को उन्होंने कभी न माना और भूले भटकों को यह कह-कह कर सदा सचेत करते रहे कि ठहरो नये गुल खिलने ही वाले ढोल की पोल शीघ्र ही खुलेगी ।

भूकम्प ने बनी बनाई इमारत को ढा दिया और आज दिन मिसेस बेसन्ट का प्रभाव हिन्दू समाज से कम से कम कुछ काल के लिए तो जड़ से नाश हो गया है । थियोसोफिकल सोसायटी को सबसे बड़ा धक्का कलयुगी अवतार, कृष्णामूर्ति सम्बंधी आन्दोलन ने पहुँचाया उसको नींव से हिला दिया हमारे अंधे हिन्दुओं की आंखें खुल गयीं यहां तक की थियोसोफिस्टों के दो दल हो गये । रही सही जो बात थी उस पर भी बनारस हिन्दू कालेज सम्बंधिनी कारवाइयों के कारण पानी फिर गया ।"[1]

---

1. भाग 6 जुलाई संख्या 4 पृ0 190 से 194

अनिश्वर वाद से आप हिन्दू धर्म की शरण में आयी आप भावी अवतार का ‖ ईसा ‖ संदेश संसार को सुनाने लगी है ।" ऐनी बेसेन्ट की इस समय हिन्दू आत्म चेतना उदार और विस्तृत हो रही थी और शिक्षित हिन्दू अपने हिन्दू समाज को रूढ़िगत बुराईयों, अंधविश्वासों आदि से मुक्त करना चाहता था । इसके विपरीत थियोसोफिकल सोसायटी की हिन्दू धर्म की हर परम्परा को प्रसिद्ध करने में लग गयी कि उसमें कोई बुराई नहीं चाहे वह सती प्रथा हो या बाल विवाह, धर्मान्धता या फिर वर्णाश्रम ।जिससे उस समय के समाज सुधारको का थियोसोफिकल सोसायटी से रूष्ट होना स्वाभाविक था ।

1911 में एक सम्पादकी टिप्पणी म्युनिसिपैलिटियों में मुसलमान प्रतिनिधि --" भारत वर्ष में मुसलमान की संख्या कम है इस धारणा से उनके स्वत्वों की रक्षा करने के लिए मुसलमानों को प्रतिनिधियों का अधिक संख्या में रहना आवश्यक है हा ! हिन्दू और मुसलमान जाति -- यदि बिना आपस में वैमनस्य पैदा किरतुम मेम्बरी कर देश का कुछ उपकार कर सको तो करो किन्तु मेम्बरी के लिए लड़ने से आपस में फूट ही बढ़ेगी और बैर बढ़ेगा,एकता भागेगी और राष्ट्र का निर्माण करना असम्भव हो जायेगा ।"

हिन्दी का अनादर और अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की नींव पड़ने के बाद हिन्दी विश्वविद्यालय स्थापित करने के प्रयासों में तेजी आ गयी पाठको से आर्थिक दान देने का अनुरोध किया गया जिसके तहत एक दान कोष

का निर्माण किया गया —" यह निश्चित हो गया कि मिसेज बेसेन्ट के सर्व धर्म समान विश्वविद्यालय की स्कीम और हिन्दू विश्वविद्यालय की स्कीम एकामयी नहीं हो सकती हिन्दू विश्वविद्यालय सचमुच का विश्वविद्यालय होगा यह समस्त आर्य सन्तान सम्पूर्ण हिन्दू जाति का विश्वविद्यालय होगा ।

मदन मोहन मालवीय ने हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के स्थापित होने की योजना की सूचना दी है साथ ही उनका यह वक्तव्य भी छपा —" अब हम अंग्रेजी गवर्मेंट के आधीन हैं इस गवर्नमेंट ने देश में पूरी तरह शांति और प्रबंध स्थापित कर दिया है " इसी तरह कांग्रेस के जन्म और उसके कार्यों का सविस्तार उल्लेख मिलता है उसके होने वाले अधिवेशनों की सूचना और उन पर अनेक लेख प्रकाशित होते रहते थे जिसमें उसकी उपलब्धियों का वर्णन ज्यादा रहता था कांग्रेस के मुख्य गन्तव्यों का आशय इस प्रकार था —– उन करों को घटाना जिनका प्रभाव सर्व साधारण प्रजा पर पड़ता है यथा नमक का कर । प्रारम्भिक शिक्षा का मुफ्त कर देना और इसका प्रचार बढ़ाना । पुलिस सुधार । सरकार ने सुधार तो अवश्य किया है । फौजी तथा विलायती तथा अन्य स्थलों में व्यय कम करना और उस द्रव्य को स्वास्थ्य की उन्नति और शिक्षा प्रचार ऐसे कार्यों में लगाना - इसमें कांग्रेस को सफलता नहीं हुई है । इंडियन सिविल सर्विस परीक्षा का लंदन के अतिरिक्त भारतवर्ष में होना जिससे भारतवासी अधिक संख्या में उच्च पद प्राप्त करें । और इस तरह अन्य मांगो को उठाना, समस्याओं के सामने लाने में कांग्रेस की निःसंदेह महत्वपूर्ण भूमिका रही थी ।

---

1. मर्यादा, कांग्रेस - लेखक भारतवासी, पृ0 131-133

इस तरह "मर्यादा" अपने समय के हर मुद्दे को चाहें वह राजनीतिक हो या फिर सामाजिक या साहित्यिक सब विषयों पर लेख छापती थी और उन पर होने वाली लम्बी बहसें उसके सम्पादकीय सरोकारों को स्पष्ट करती है वह एक सांस्कृतिक पहचान, एक धार्मिक समूह एक जाति के रूप में हिन्दू जन की आत्म परीक्षा अपने नायकों, अवतारों पर आधुनिक मूल्यों की दृष्टि से विचार करके और इन विचारो का पारम्परिक समझ से द्वन्द, और मर्यादा इस द्वंद्व और मंथन का मंच बनी । अतीत की परीक्षा समकालीन अस्मिता को परिभाषित करने के प्रयत्न के अन्तर्गत है । 'भारत-भारती' की समालोचना से पूर्ण रूप से सहमत न होते हुए भी छापना उसकी पत्रकारिता की ईमानदारी को स्पष्ट करती है गांधी-तिलक प्रसंग, प्रेस एक्ट का विरोध और साथ ही जलियां वाला कांड पर विरोध होते हुए भी पत्रिका में ज्यादा जगह न देना उसके कहीं न कहीं परिस्थितियों से समझौता करने की समझ का परिचय देती है ।

—x—

मर्यादा के संस्थापक सम्पादको का संक्षिप्त जीवन परिचय —

1• प0 मदन मोहन मालवीय – अभ्युदय प्रेस के संस्थापक

ज0 25 दिसम्बर 1861 ई0, प्रयाग, पि0 बैजनाथ मालवीय, शिक्षा बी•ए•, एल•एल•बी•, प0– हिन्दोस्थान, कालाकर, दैनिक, अभ्युदय, प्रयाग, [साप्ता• 1907], इसके अतिरिक्त "महारथी " दिल्ली, मासिक सनातन धर्म काशी [साप्ताहिक]•••• "भारत " और " हिन्दुस्तान" एवं "मर्यादा " आदि पत्रों के मूल प्रेरणा स्रोत आप ही रहे । वि: हिन्दी साहित्य-सम्मेलन प्रयाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा सनातन धर्म सभा जैसी राष्ट्रीय महत्व की संस्थाओं के संस्थापक : स्वाधीनता संग्राम के शीर्षस्थ नेताओं में से एक हिन्दी के कट्टर पक्षधर नि0 12 नवम्बर 1946 ।

2· कृष्णकांत मालवीय --

ज0 जून 1883, प्रयाग प0 मदन मोहन मालवीय द्वारा स्थापित अभ्युदय [प्रयाग] का 25 वर्ष तक सम्पादन [1909] किसान और मर्यादा का भी सम्पादन , र0 : सुहागरात, बहुरानी की सीख, मनोरमा के पत्र आदि वि0 - अल्पायु में ही अभ्युदय का भार सँभाला तथा उसे निष्पक्ष निर्भीक एवं उदारवादी पत्र बनाया, स्वाधीनता संग्राम सेनानी ।[2]

3· सम्पूर्णा नन्द :- जन्म 1 जनवरी 1890 ई0 में काशी उत्तर प्रदेश में हुआ था बाल्य काल से ही वे साहित्य साधना में लग गये 1918 में इन्दौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन अधिवेशन में साहित्य विभाग के सभापति बने 1935 में काशी से समाजवादी बन के एक हिन्दी साप्ताहिक सम्पादन करते थे पराड़कर जी के जेल जाने पर आज का भी सम्पादन किया काशी के "जागरण" और " मर्यादा" का भी सम्पादन किया राजनीति में प्रवेश करते ही सम्पूर्णा नन्द जी समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हुए थे ।

4· मुंशी प्रेमचंद :-

ज0 31 जुलाई, 1880 ई· लमहीग्राम, पि0 अजायबलाल, शि0 बी·ए· प0 मुख्य सम्पादक " माधुरी " लखनऊ मासिक, हंस, जागरण, कुछ समय तक "मर्यादा" में भी ।

अध्याय - चार

" ज्ञानराशि का संचित कोश और मर्यादा "

मर्यादा का उद्देश्य था हिन्दी के पाठको को उच्चकोटि की शिक्षा के साथ-साथ राजनीतिक विषयों की शिक्षा देना उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रेस एक्ट तथा सरकार की कोप दृष्टि के कारण राजनीतिक विषयों की चर्चा करना खतरे से खाली नहीं था।

यह पत्रिका अपने समय की अन्य पत्रिकाओं की अपेक्षाकृत कहीं अधिक सामाजिक-राजनैतिक साहित्यिक और ज्ञान विज्ञान से सम्बंधित लेख इत्यादि छापती थी। " मर्यादा" का युग महावीर प्रसाद द्विवेदी का था जिनका प्रमुख सूत्र था " साहित्य ज्ञान राशि का संचित कोश है " इसी सूत्र को "मर्यादा" ने आत्मसात कर लिया था। और उसी के तहत वो दूसरे देशों में भी होने वाले राजनैतिक मुक्ति आंदोलनों का परिचय देती थी यह अपने पाठकों को फ्रांस, जर्मनी जापान में राज्यक्रांति स्वाधीनता और उन देशों में होने वाली घटनाओं के प्रेरणा दायक लेख छापती थी जिनको बहुत बार विदेशों में बसे भारतीय लिखते थे इन लेखों को छापकर "मर्यादा" अपने पाठको को उन देशों से स्वाधीनता के लिए संघर्ष की प्रेरणा लेने का उपदेश दे रही थी।

"मर्यादा " के समय प्रेस पर सरकार ने अनेक तरह के प्रतिबंध लगाये हुए थे पर "मर्यादा" ने अनेक लेखों के साथ कविताएं और कहानियां भी छापी जिसमें देश प्रेम और उसकी पराधीनता पर दुःख स्पष्ट दिखता है। मर्यादा में साहित्य, ज्ञान विज्ञान, राजनीति सब शामिल था।

"मर्यादा" के समय साहित्य विशेष तौर पर गद्य विधाएं अपने विकास के दौर में थी उनमें कहानियाँ और उपन्यास आदि छपते थे, कभी-कभी साहित्यकारों पर लेख पर एक दो - सबसे ज्यादा साहित्य पर आलोचना छपती थी यह विधा मर्यादा पत्रिका ने सबसे पहले शुरू की थी यह स्तम्भ आलोचना प्रत्यालोचना के नाम से छपता था इसका स्तर नि:संदेह ऊँचा था- इसी में भारत भारती को लेकर बहस भवभूति आदि पर बहस हुई थी किशोरी लाल गोस्वामी का लिखा हुआ उपन्यास नौलखा हार - छप रहा था पर यह अचानक बीच में बंद हो गया बिना किसी सूचना के इसके अलावा प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवा-सदन' की सटीक आलोचना छपी थी तब तक उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद को बहुत अच्छा लेखक नहीं माना जाता था । प्रेमचंद की " हार की जीत " नामक कहानी और " त्यागी का प्रेम " यह दोनों कहानियाँ 1922 में छपी थी इस कहानी में तीन मुख्य पात्र हैं शारदाचरण, लज्जावती और सावित्री " यह एक प्रेम कहानी है । " त्यागी का प्रेम " यह एक समाज सुधारक गोपी नाथ की कहानी है जो जनसेवा के लिए बालिका विद्यालय और अन्य समाजसेवी संस्थाएं खोलते हैं बालिका विद्यालय में एक विधवा अध्यापिका है जो स्नेहमयी है सबका मन जीत लेती है गोपी नाथ का भी -- आनन्दी से मिलकर गोपीनाथ की यह धारणा खत्म हो जाती है कि महिलाएं मायावी और उन्नति में बाधक होती हैं - आनन्दी को एक सन्तान उत्पन्न होती है जिसके पिता गोपी नाथ हैं सब गोपी नाथ की आलोचना करते हैं लेकिन गोपीनाथ आनन्दी बाई से विवाह नहीं करते न सबके सामने यह स्वीकारते हैं

कि वह सन्तान उनकी है लोग उनसे घृणा करते हैं आनन्दी बाई से करूणा धीरे-धीरे " इस घटना को पन्द्रह वर्ष बीत गये लाला गोपीनाथ नित्य बारह बजे रात को आनन्दी के साथ बैठे नजर आते हैं वह नाम पर मरते हैं आनन्दी बाई प्रेम पर ।"[1] यह कहानी समाज सुधारक के ऊपर जो समाज के सुधारने की बात करता है उसके लिए कड़ी मेहनत भी करता है लेकिन खुद ही कभी आनन्दी बाई से विवाह नहीं कर पाता । " विधवा" कहानी श्रीयुत श्रीशचंद जोशी - कहानी साधारण सी जिसमें कमला नाम युवती जो कि विधवा हो गयी उसका धनी भाई आता है उसको मायके ले जाने के लिए लेकिन वह भाई के साथ न जाकर अपने देवर और उसकी पत्नी और बच्चों के साथ रहना स्वीकार करती है । पति व्रत, पत्नीव्रत, प्रेमचंद की हार की जीत आदि कुछ अन्य महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं " भाग्यवती "श्रीयुत जोगेन्द्रपाल सिंह द्वारा लिखित " भाग्यवती " एक किसान की उच्च शिक्षा प्राप्त बेटी है किसान के यहाँ विजयनगर के राजा सज्जन सिंह एक मजदूर बन कर सुशील कन्या की तलाश में आते हैं भाग्यवती के घर पर रहते हैं भाग्यवती पसंद आने पर उससे शादी कर ले जाते हैं इसी कहानी में जो मूल कथ्य है वह यह कि --" सुन्दर सिंह चाहते थे हिन्दू विश्वविद्यालयके लिए उनका गाँव भी धन भेजे सुन्दर सिंह के गाँव से 500/ रुपया एकत्रित हो गया सज्जन सिंह के पास देने के लिए कुछ नहीं " उसने दस रुपये ही देकर अपने मन को संतुष्ट कर लिया । भाग्यवती ने भी पाँच रुपये दिये और कहा कि यह

हार की जीत - बैशाख (सं॰ 1979) 1922 पृ0 18
"त्यागी का प्रेम " कार्तिक " " पृ0 24

रूपया मैंने अपनी माता के समय से अब तक मैं जोड़ पाया है, मैं समझती हूँ कि इससे अच्छा अवसर इस रूपये के उपयोग करने का नहीं है आशा है देश के नेता गण मेरे दान का निरादर न करेंगे । कुल रूपया मनीआर्डर द्वारा मालवीय जी की सेवा में भेज दिया गया । " अम्बालिका या तीज की साड़ी । ॥ एक छोटीली आख्यायिका ॥ लेखक - पं॰ छबीलेलाल गोस्वामी। इसमें अम्बालिका युवती अपने पति से विदेशी साड़ी लेने से इंकार कर देती है और स्वदेशी साड़ी लाने को कहती है - नंद किशोर से उसकी बहस -- " निःसंदेह, जापान हमारे देश में नहीं है, फिर भी आज कल स्वदेशी वस्तुओं में जापानी चीजें भी समझी जाती हैं और देशी चीजों की दुकानों पर जापानी माल भी खूब बिकता है ।"

अम्बालिका --अच्छा मैं यह पूछती हूँ कि जापानियों के भोजन करने से क्या हम लोगों के पेट भर जायेंगे ? जब इस देश में प्लेग चलेगा तो क्या हम लोगों के बदले में जापानी यहाँ मरने आयेंगे , या यहाँ अकाल पड़ने पर जापान से गल्ले के खैराती जहाज यहाँ अन्न देने के लिए भेजे जायेंगे ?" भिक्षुक का हृदय - गल्प ॥फ्रांस प्रवासी ॥ द्वारा लिखित कहानी में भिक्षुक अपनी पत्नी एवं पुत्र को खो देता है - भूख और गरीबी के कारण एक धनी घर में चोरी करने जाता । लेकिन वहाँ एक छोटे बच्चे का फोटो दिख जाता है वह उसी को लेकर बिना चोरी किए लौट आता है । बच्चे का फोटो लेने के बाद - "फिर से उसके हृदय में कोमलता का प्रादुर्भाव हुआ । यही उसकी प्रथम और अंतिम चोरी थी उसी दिन से उसे और किसी वस्तु के चुराने की लालसा नहीं रही ।

अब उसे कुछ अभाव न था ।" लेकिन धीरे मर्यादा में कहानियाँ छपनी बहुत कम हो गयी थी । साहित्य पर अन्य लेखों में अगस्त सन् १९११ में हिन्दू-साहित्य-सम्मृद्धि नामक लेख में - स्कॉ पेनहार सरीखे विद्वान कहने लगे कि -- उपनिषद मेरे जीवन के शाँति दाता है और वे मृत्यु के बाद भी मुझे शाँति प्रदान करेंगे ।"[1] पूर्वीय साहित्य प्रवर्धिनी समिति के प्रथम प्रेजिडेंसर विलियम जेम्स महोदय ने अपने भाषण में कहा था कि अब हम संस्कृत साहित्य भंडार के रास्ते पर आ रहे हैं । " आजकल जो बुराईयाँ अंग्रेजी पढ़े युवकों में देखने में आती हैं उन सब का मूलकारण धार्मिक शिक्षा का अभाव और हिन्दू शास्त्रों से अनभिज्ञयता है । "

कवि गंग पर लेख बिहारी जायसी शेखर कवि आदि पर लेख और बहस मर्यादा के हर अंक में होती रहती थी बालकृष्ण भट्ट के द्वारा लिखित लेख छपा बालकृष्ण जी उस समय " हिन्दी प्रदीप " के सम्पादक भी थे । उन्होंने एक लेख लिखा --" जुदी-जुदी भाषाओं की कविता के जुदे-जुदे ढंग ।" इसमें उन्होंने लिखा - यह सिद्ध है कि भाषा का ग्रन्थन प्रायः जलवायु के अनुकूल होता है अर्थात जल वायु का असर भाषा पर अधिक पड़ता है - बंग भाषा द्रविड, महाराष्ट्र और पंजाब की भाषाओं से अधिक कोमल और ललित क्यों है । .... करुणा वात्सल्य और श्रृंगार रस का निर्वाह जैसा बंग भाषा में बनता है वैसा बीर रस का नहीं -- मराठी द्रविड़ी और पंजाबी जैसा

------

१. हिन्दू साहित्य सम्मृद्धि -: मेजर वामनदास बोस, अगस्त १९११ पृ० १७२

वीर रस का उद्गार आवेगा वैसा श्रृंगार करुणा और वात्सल्यका नहीं ।"
अब दूसरी बात यह है कि प्रत्येक भाषा का काव्य भी इसी के अनुसार एक निराला ढंग लेता गया जैसा फारसी में आशिक के झगड़े आदि हैं ।"
मर्यादा के लेखों में उस समय साहित्य से ज्यादा सामाजिक उन्नति का प्रयास था उनके ज्ञान से ज्यादा प्रज्ञा का विकास करना था । साथ ही उसे यह स्वीकारने में भी संकोच नहीं था कि आज जो साहित्य में तेजी से विकास हुआ है उसमें अंग्रेजी साहित्य का महत्वपूर्ण योग है । अप्रैल 1920 में " भारतीय साहित्य की गति " नाम से एक लेख छपा इसमें कहा गया कि " अंग्रेजी भाषा के आदर्श से और वर्तमान युग की आवश्यकताओं के कारण भारतीय भाषाओं का आश्चर्य जनक विकास हुआ जिसके परिणाम स्वरूप हमारी भाषा में सरलता और क्लिष्टता दोनों आ गई है आरम्भ में हमारी साहित्यिक भाषा में लचीलापन, भिन्न-भिन्न प्रकार से भाव प्रकट करने की शान्ति और प्राकृतिक गति का अभाव था अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक काल में जो गद्य लिखा जाता था उसमें संस्कृत और अर्बी के बड़े-बड़े शब्दों की भरमार रहती थी और बोलचाल की भाषा में और उसमें आकाश पाताल का अंतर था । माइकेल मधुसूदन दत्त से कवि तथा ईश्वरचन्द विद्या सागर से गद्य लेखक होने से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में बंगाल को ऐसे ही साहित्य पंडित मिल गये ।" "बंगला साहित्य की जो कुछ उन्नति विद्यासागर ने की वही उनके बीस वर्ष पश्चात हिन्दी की भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने की है । विद्या सागर के गद्य की अपेक्षा हरिश्चन्द्र के गद्य पर संस्कृत का कुछ कम आधिपत्य था परन्तु इसमें कुछ भी संदेह

नहीं कि हरिश्चन्द्र पर बंगला का प्रभाव पड़ा । .... उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से भारतीय नाटकों में पूर्णतया परिवर्तन हो गया है और वे अब वास्तव में वर्तमान अंग्रेजी नाटकों को पूरी-पूरी नकल है कालिदास के समय के संस्कृत नाटकों के प्राचीन नमूने आज बिल्कुल लुप्तप्राय हो गये हैं ।"

आजकल नाटकों में - शैली में घटना चक्र में, विशेष लक्षणों में और सृष्टि सौन्दर्य आदि सब बातों में बंगला उर्दू हिन्दी और मराठी के आधुनिक नाटक अंगरेजी नाटकों की स्पष्ट नकल है ।

" हमारे राष्ट्रीय भावों की जागृति और ऐतिहासिक ज्ञान की वृद्धि के द्वारा यूरोप के प्रभाव ने हमारे साहित्य को अलंकृत किया है "[1] सर यदुनाथ सरकार द्वारा लिखित लेख में भारतीय साहित्य ने किस तरह से नया रूप धारण किया किन कारणों से उनमें बदलाव आया इसका लेखक ने सविस्तार वर्णन किया है ।

इसी तरह जून 1911 में सूफीमत पर एक लेख छपा जिसमें सूफीमत की उत्पत्ति उसकी शिक्षा आदि के बारे में एक विस्तृत लेख है " सूफीमत कट्टर मुसलमानी मत से बहुत स्थानों में विपरीत भी गया है सूफीमत इस-लाम के विपरीत सूफीमत में प्रवेश करने के पहले तृष्णा और मोह का द मन करना अत्यंत आवश्यक है उनका उपदेश है कि :-

----

1. भारतीय साहित्य की गति -[सन् 1850 के बाद] सर यदुनाथ सरकार अप्रैल 1920 पृ0 168 से 172

"तालिबे दुनिया मोहन्नस तालिबे ओकबा मुख-नस, तालिबे हक मुजश्टर "।

दुनिया का भूखा स्त्री तुल्य है, बहिश्त का भूखा नामर्द है, ईश्वर का भूखा मर्द है । एक सूफी साधु कहते है "मूर्ख मसजिद बनवाते हैं किन्तु वे अपने हृदय के मंदिर को भूल जाते हैं ।" " सूफी मत का असर - यद्यपि सूफियों का प्रेम पवित्र और महान था किन्तु साधारण पुरुषों में उसका अच्छा असर नहीं पड़ा - तंगदिल मुसलमान उदार तो हुए पर मुर्दादिली उन पर छा गयी ।"[1]
"मर्यादा" के पहले अंक में ही पूर्व-दर्शन नाम से मैथिलीशरण गुप्त की कविता छपी ।

हम हिन्दुओं के सामने आदर्श जैसे प्राप्त हैं,
संसार में किस जाति को किस ठौर वैसे प्राप्त हैं ?
भव सिंधु में निज पूर्वजों की रीति से हम तरें
यदि हो सकें वैसे न हम तो अनुकरण तो भी करें ।[2]

जून 1911 में " बसन्त का अंत " नाम से रोला-छंद में एक पद्य रचना छपी -

बीत गये वासर वसन्त के गर्मी आई ।
चला गया उत्साह, उदासी कैसी छाई ।।
वे सुंदर सब दृश्य हुए हैं सपना जैसे ।
प्रकृति बताती हमें " सभी है नश्वर ऐसे "।।"[3]

1• मर्यादा - जून 1911, पृ0 57-58
2• मर्यादा -नवम्बर 1911 पूर्वदर्शन - मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 3
3• बसन्त के अंत - कमलाकर कवि , पृ0 87 /1911

"सुखमय जीवन", " देशभक्त होरेशस " " आकाश वाणी" जिसमें भारतमाता के दु:खो का वर्णन है आदि अनेक कविताएँ हैं । फरवरी 1914 में " प्रेम की अंतिम श्रेष्ठता ":-

धन्य है प्रेम को बीज हिये
    अरु अन्य जो प्रेम निबाहन हारो ।
धन्य वो व्यक्ति जो प्रेम करें,
    जग धन्य है प्रेम प्रसारन हारो ।
        ध्यान ज्ञान मान अपमान सब वाही पर ।
प्रेम की तरंग प्रेम धार में बहत है
    प्रेम दृष्टि लागी मम प्यारो प्रेम ।
प्रेम का पियासो प्रेम प्रेम ही कहत हैं ।"[1]

मर्यादा के लेखक जाति, विधवा, समस्या से लेकर साम्प्रदायिकता आदि की समस्याओं से चिन्तित थे - इसी के अन्तर्गत 1940 में एक लेख छपा- "नई लकीरे " - इसमें लेखक ने प्रत्येक धर्म के लोगों से धर्म की धर्मान्धता को छोड़ने का अनुरोध किया और कहा कि धर्म का इस्तेमाल समाज की भलाई के लिए हो तो वह हमारे देश के लिए लाभकारी होगा - " कुरान में ज्ञान का आदि और अंत है यह मानकर मौलवी साहब अज्ञान का घूँघट डाले रोज पाँच बार मक्के की ओर मुँह करके हजरत मुहम्मद साहब की दुहाई देते हैं - इस अनित्य

1• प्रेम की अंतिम श्रेष्टता - लेखिका-एक प्रेमयोगिनी, पृ0सं• 217

संसार में ब्राह्मण देवता मनु जी के धर्म समाज राजनीति और अन्य प्रत्येक विषयों के वचनों को ध्रुवसत्य मानकर संध्या होम आदिकर अपने नियम का प्रतिदिन पालन करते हैं । एक जो अपने को हिन्दू कहते हैं दूसरे जो मुसलमान । इस नाम भेद के कारण भारतवासी आपसमेंलड़ कर अविद्या के कुंड में अपना बलिदान कर चुके हैं ।

मौलवी साहब यदि एक मास " कुरान " छोड़ सूर्योदय से पहले उठ गंगा स्नान कर वेद पाठ करें और ब्राह्मण देवता यदि एक सप्ताह भी अपना पूजा पाठ छोड़कर मक्का भिमुख होकर मुसलमानी विधान से प्रार्थना करें तो भारत में सत्य युग का आविर्भाव हो जाय रामरहीम का अंतर भूल जाय किसी का भी परमात्मा नाराज नहीं होगा भारत की गौरव लक्ष्मी का पुन: उदय हो जायेगा व देश के पुत्र देश की सेवा कर सकेंगे ।"[1] यहाँ लेखक ने साम्प्रदायिकता की विभाजक भ्रान्ति और उनसे होने वाले नुकसान को बहुत पहले पहचान लिया था इसीलिए यदि धर्म झगड़े का कारण है तो वह धर्म के माध्यम से ही विभाजक रेखा को मिटाना चाहता है ।

अकाल उन्नीसवी सदी की गंभीर समस्याओं में से एक समस्या था "मर्यादा"की संख्या 6 में -" पुराने अकालों की कथा " नाम से एक लेख छपा इसमें 1770 से 1900 तक 930 वर्ष के ब्रिटिश शासन में भारत में 22 विकराल अकाल पड़े । जिसमें 1770 में बंगाल का अकाल 1783 में मदरास का अकाल

1.नई लकीरे -1920 जनवरी- लेखक अमरीका प्रवासी राजकुमार, पृ0 12

प्रमुख है । 1912 में गुजरात में अकाल पड़ा । इसी अकाल को विषय बनाकर एक नाटक छपा इसी अंक में – " अकाल अथवा अद्भुत अनिमंत्रित अतिथि " इसमें अकाल की समस्याओं पर विचार किया गया है, नाटक का पात्र निर्मल मित्र ! क्या रसातल वासियों ने बिना जलबल के ही अन्न उपजाने के किसी यंत्र का अविष्कार कर लिया है? विमल – अवश्य ! इसमें क्या संदेह है ! साल को प्रत्येक फसल के लिए वे इकट्ठे होकर मेघ महाराज से पानी की कड़ी निमित्त पूजा पाठ लेकर नहीं बैठ जाते किन्तु वे वर्षाकाल के एकत्रित किये जल से ही समय पर काम किया करते हैं ।"[1] ....." निर्मल – मित्र! अमेरिका वासियों की नाई, सिंचाई और कल, यंत्र द्वारा खेती प्रारम्भ में इतना महँगा है कि हमारे निर्धन देशभाई उससे लाभ नहीं उठा सकते । नहर निकालने लाखों करोड़ों का व्यय होगा जिनका व्यय वे बिचारे स्वपन में भी नहीं कर सकते ।

विमल – किन्तु ब्याह के अवसर पर नाच रंग में आतिशबाजी में स्वपन्न में पाई सम्पत्ति की नाई अवश्य प्रतिवर्ष जितना चाहें उतना धन व्यय कर धूल में मिला सकते हैं --

फिर उपाय क्या है ?

विमल – श्रीमान गोखले महाराज को परमात्मा युगयुग आये ! मंत्र सर्वसाधारण के लिए शिक्षा प्राप्त करना है ।" देश का उद्धार मूर्ख कूपढ जाति से कदापि

----

1. पुराने अकालों की कथा – स्व. आर.सी.दत्त पृ0 387 भाग –6
अकाल अथवाअद्भुत अनिमंत्रित अतिथि –लेखक श्रीयुत माधवाचार्य श्रीनगर पृ0 36। (अंक वही)

नहीं हो सकता ।"

यह समय सिर्फ राजनीतिक उथल-पुथल का नहीं वरन सामाजिक जागृति का भी दौर था यहाँ इस लेख में लेखक अपनी बात शुरू करता है अकाल से और भारतीयों का कृषि के लिए वर्षा पर आधारित रहना और साथ ही यह कहना कि उनके पास महंगे कृषि यंत्रों के लिए धन का अभाव है - इस पर लेखक कहता है त्योहारों और शादी ब्याह में जो व्यर्थ का धन उड़ाते हैं उसे यदि वह कृषि, व्यापार आदि में लगायें तभी हमारा देश प्रगति कर सकता है साथ ही उसका यह वाक्य कि " देश का उद्धार शूद्र जाति से नहीं हो सकता ।" इस सत्य की ओर इशारा करता है कि बिना ज्ञान के उन्नति असम्भव है । मार्च 1919 में विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक द्वारा लिखित प्रेमचंद के हिन्दी उपन्यास " सेवासदन " की आलोचना छपी ---

" हिन्दी में अपने ढंग का यह पहला उपन्यास है पहली बात यह है कि उ उपन्यास का उठान अच्छा नहीं हुआ - एक थानेदार का कभी रिश्वत न लेना आवश्यकता पड़ने पर ले लेना और पहली बेर लेते ही फंस जाना इन तीनों घटनाओं में बहुत कुछ विचित्रता है । ऐसी घटनाएं असम्भव हैं ऐसा मैं नहीं कहता परन्तु कम होने वाली घटनाओं में अस्वाभाविकता का रंग आ जाता है सामाजिक उपन्यासों में अस्वाभाविकता जहाँ तक बचाई जा सके अच्छा है। इसी तरह सुमन का पतन करने में कुछ जबरदस्ती की गयी है। कहीं तो ऐसा लगता है कि लेखक ने उसका पतन इसलिए किया कि अंत में उसका लक्ष्य उसमें सुधार लाना था । उसके पतन के अच्छे और स्वभाविक कारण कम हैं ।"

सुमन ने ईसाई लेडी से शिक्षा पायी थी इसलिए वह विलासप्रिय हो गयी थी कम से कम लेखक महोदय कुछ पृष्ठों में यह दिखाना कि वह शिक्षा का कौन सा ढंग था — केवल ईसाई लेडी द्वारा शिक्षा का दिया जाना ही विलास प्रियता और दुष्कामनाएँ उत्पन्न कर देता है यह बात कुछ कम समय में आती है ।"[1] सुमन - भोली वेश्या के सम्पर्क में आती हैं वुद वेश्यामार्ग अपना लेती है - लेकिन यहाँ " लेखक ने सुमन को शुद्ध रखने की व्यर्थ चेष्टा की है क्योंकि वह स्वयं अपनी इच्छा से वेश्या बनती है - मेरी तुच्छ सम्मति में साधारणत: दो तीन पात्रों का और विशेषत: सुमन का चरित्र चित्रण करने में लेखक कुछ अधिक समय नहीं हुआ है ।" हिन्दी संसार प्रेम चंद से बहुत कुछ आशा रखता है ।"[2] विशम्भर नाथ शर्मा कौशिक उस समय के सम्मानित और प्रसिद्ध लेखक थे - उन्होंने सेवासदन की सटीक आलोचना लिखी है और यह आलोचना जिन आधारों पर की गयी वह महत्वपूर्ण है पहला दारोगा का पहली बार ही जरूरत पड़ने पर रिश्वत ले लेना और पकड़ा जाना- अस्वाभाविकता का रंग आ जाता है । लेखक को अस्वाभाविकता से बचना चाहिये- दूसरा जो महत्वपूर्ण विरोध है कि सुमन ने ईसाई लेडी से शिक्षा पायी- इसके लिए वह विलासप्रिय हो गयी - यहाँ लेखक ने यह नहीं बताया कि उसने किस ढंग की शिक्षा पायी थी क्योंकि शिक्षा किसी को विलास प्रिय नहीं बनाती और कहानी में सहज प्रवाह नहीं है लेखक के विचार हावी है । सितम्बर 1921 में " उपन्यास साहित्य " पर समालोचना छपी जिसमें उपन्यास के विकास

---

1. मार्च 1919 , पृ0 164
2. वही

और उसके साहित्यिक स्तर की चर्चा की गयी है इसमें लिखा गया कि "जिस दर्रे के उपन्यास अब तक हिन्दी साहित्य में पदार्पण कर चुके हैं उनके विरुद्ध समालोचक को अपनी कलम उठाने का अधिकार अवश्य है हिन्दी साहित्य में उपन्यास तीन ढंग के हैं - एक तो वे जिनकी नींव तिलस्म पर है हिन्दी साहित्य में इनके जन्मदाता देवकी नन्दन खत्री हैं लोगों ने इसे पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी इतना लाभ अवश्य हुआ पर इन उपन्यासों ने किसी के चरित्र को संवारा हो ऐसा नहीं है। दूसरी श्रेणी के उपन्यासों की नींव लंदन रहस्य पर है इसके जन्मदाता " किशोरीलाल गोस्वामी " हैं मालूम नहीं अब वे कहाँ हैं उपन्यास या उनके पात्रों के नाम न सुनिये उद्देश्य बहुत ही अच्छा। पाप का फल देखो परन्तु खूबी यह कि पाप का फल बुरा देखकर भी उस पर आसक्त हो जाओ ठीक है जैसी रूह वैसे फरिश्ते।

तीसरी श्रेणी के उपन्यास गनीमत हैं पर उनसे हमारे साहित्य का कोई गौरव नहीं बढ़ा बंगला साहित्य में बहुत से उच्चकोटि के उपन्यास हैं यह उन्ही का छायानुवाद है कोई भी लेखक इस उपन्यास साहित्य में है जिसकी तुलना टैगोर या बंकिम से की जा सके। खूब ढूँढा तो एक महाशय मिले उर्दू से तोड़कर उन्हें किसी तरह हिन्दी साहित्य मंदिर की और लाये तो कोई उत्साह बढ़ाने वाला नहीं..... आपका मौलिक उपन्यास सिर्फ एक है जिसे हम किसी साहित्यिक प्रदर्शनी में भेज सकें { सेवासदन } परन्तु हम लोग कद्र करना जानते नहीं, नहीं तो दूसरा सेवा सदन निकलता बरदान की नौबत नहीं आती।[1]

---

1. हिन्दी उपन्यास - लेखक — ——— सितम्बर 1921

इसलिए हमारा सर्वसाधारण से अनुरोध है कि यदि कोई प्रतिभा-शाली लेखक मिल जाये तो वे उसे सुख से जीवन व्यतीत करने का मौका अवश्य दें। मर्यादा में - साहित्य सुमन संचय, साहित्यिक परिचय, समालोचना नाम स्तम्भ निकलने शुरु हुए काशी में मर्यादा के आने के बाद उसमें यह परिवर्तन शुरू हुआ, काशी आने से पहले - आलोचना- प्रत्यालोचना नाम से स्तम्भ निकलता था लेकिन काशी आने के बाद यह दो स्तम्भ निकलने आरम्भ हुए ।

इस तरह "मर्यादा" में छपने वाला साहित्य सिर्फ मनोरंजन के लिए ही नहीं था बल्कि पूरी तरह ज्ञान वर्धक होता था और लोगों में उत्कृष्ट साहित्य के प्रति उत्साह जगाना था " बालकृष्ण भट्ट" हिन्दी प्रदीप के सम्पादक उनकी मृत्यु पर - हा! भट्ट जी !! शोकांजलि तथा जीवन का एक चित्र नाम से पद्य रचना छपी -

हिन्दी से अनभिज्ञ लोग थे शून्य हृदय जब
किया प्रकाशित तम नाशक "हिन्दी प्रदीप " तब ... ।
हिन्दी का साहित्य सदा ऋणी रहेगा
उसके भीतर सदा भट्ट गुण स्रोत बहेगा ।
वे कांग्रेस में सभी वर्ष यद्यपि जाते थे ।
पर उसके उद्देश्य युक्ति से सम्मत नहिं थे ।।
वे कहते थे छोटे को बलवान बनाओ
उनको शिक्षित करो व्यर्थ मत समय गँवाओ ।" [1]

---

1. भट्ट जी -

"मर्यादा" में अन्य समसामयिक विषय पर भी खूब चर्चा होती थी । नियमित समय पर भोजन और उसकी आवश्यकता पर एक लेख छपा -"नौकर या अंग्रेज महिला दोनों के खाना बनाने पर पुरुष एक समय में भोजन कर लेते हैं पर भारतीय स्त्री सारा दिन रसोई में क्यों खटती रहती है । " इस विषय से लेकर फ्रांस, जर्मनी में युद्ध एवं उसके कारणों पर विस्तृत लेख हैं साथ ही "गर्भिणी स्त्री को प्रसवकष्ट क्यों होता है " उस समय के प्रसिद्ध डा. के॰सी॰ ओडी ने इसकी वैज्ञानिक व्याख्या की । श्रावण सं॰ 1979 में "संतान वृद्धि की रोक " इस विषय पर सम्पादकीय टिप्पणी छपी " अनु मोल विवाह " ज्येष्ठ संवत 19179 में एक और सम सामयिक प्रसंग के अंतर्गत एक और टिप्पणी छपी -" अनु मोल विवाह - बम्बई हाईकोर्ट ने इसे वैधता प्रदान की दूसरे वर्ग में कन्या व युवक दोनों विवाह कर सकते हैं ।"

"मर्यादा " ने उस समय भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति को समझा भर ही नहीं था बल्कि उसने इस स्थिति को स्वीकार लिया था कि जब तक स्त्री पर अत्याचार कम नहीं होंगे उन्हें शिक्षा नहीं दी जायेगी तब तक समाज का विकास तो होगा ही नहीं देश की प्रगति नहीं कर सकता -1911 में (क्या यह सत्य है "-- नाम से एक लेख में इसी तथ्य को स्पष्ट तौर पर कहा गया --" इस संसार में स्त्री का जन्म पुरुष के साथ सुखों के सहभागिनी होने को नहीं हुआ है- परन्तु पशुवत पुरुषों की सब भांति सेवा करने को .... विवाह के समय तक उन्हें उनकी पराधीन दशा का पूरा ज्ञान हो जाता है ।

1॰ नियमित काल पर भोजन - ज्येष्ठ 1979 (संवत्)

ऐसी ही सोचनीय दशा यूरप में भी पहिले थी किन्तु विज्ञान के फैलने से यह मत मान ली गई कि स्त्री और पुरुष के अधिकार बराबर हैं और जब से यूरप में स्त्रियों का आदर होने लगा तभी से उन्नति भी शुरु हुई । अंधी जातियों में स्त्रियों की दशा और भी सोचनीय है -- समुद्र की निर्मल तरंगे और हिमालय का निर्वर्णनीय दृश्य मालूम होता है ईश्वर ने उनके लिए नहीं बनाया है ।.... उनकी दशा पिंजड़े में बंद पक्षियों से अधिक मिलती है संसार में तीन देश हैं जहाँ स्त्रियों का आदर करना धर्म के एक अंश से अधिक माना जाता है जरमनी, अमेरिका और इंग्लेण्ड ।- हमें अपने दोषों को दूर करने की कोशिश करना होगा ।"

"संतान वृद्धि की रोक " साहित्य सुमन संचय में इस विषय पर लिखा गया इसमें लेखक ने कहा भारत एक गरीब देश है यदि संतान कम होंगी तो पालन पोषण उचित हो सकेगा और हम देश की प्रगति में सहायक होंगे जमीन का बँटवारा कम होगा " यह मान लेना चाहिये कि दूरदर्शी बुद्धि को यह अधिकार है कि समुदाय की सुख वृद्धि के लिए अंधी प्रवृत्तियों को दबाये यदि बुद्धिमत्ता के साथ संतान वृद्धि की रोक की जाय तो मनुष्य जाति के मिट जाने की भी कोई आशंका नहीं है इससे उन्ही लोगों का अस्तित्व मिट जायेगा जिनका जीवन उनके और दूसरो के लिए बोझ होता है इससे दैवी प्रबन्ध में कोई विघ्न नहीं पड़ता । जनसंख्या की अपरिमित वृद्धि, आर्थिक कष्ट, युद्ध दरिद्रता को यही एक मात्र औषिधी है - इसके द्वारा मनुष्य जाति का मानवाधिकार का

मर्यादा - मई 1911 पृ0 29

विकास भी होगा वैज्ञानिक रीति पर सन्तान वृद्धि की रोक करने से मानव जाति की उन्नति सुख समृद्धि तथा उत्कृष्टता में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी ।"

उसी समय नवशिक्षित वर्ग ने भली-भाँति समझ लिया था कि देश की उन्नति के लिए जनसंख्या का सीमित होना आवश्यक है इस बात को "मर्यादा" के लेखकों और उस समय के बुद्धिजीवी वर्ग की यह समझ आज दुनिया के विकास की प्राथमिक जरूरत बन चुकी है और आज सरकार के द्वारा व्यापक पैमाने पर जनसंख्या सीमित करने का कार्यक्रम उस समय के शिक्षित वर्ग की प्रगतिशील सोच को प्रमाणित करता है । सभी की शिक्षा एवं उन्नति के साथ इस समय विचारकों ने भली भाँति जान लिया था कि स्त्री की शिक्षा एवं सामाजिक स्तर में उसको सम्मानित स्थान देना आवश्यक है अन्यथा हमारी उन्नति असम्भव है ।" आधुनिक काशी की छटा " नाम से 1978 संवत् में आलोचना छपी इसमें व्यंग्यात्मक शैली में काशी स्थिति पर प्रकाश डाला गया-" प्लेट फार्म पर उतरते ही नगर का प्राचीन सौन्दर्य घर करने लगता है सबसे पहले आपको पुराना कालीन वाले एक्के का दर्शन होता है घोड़ा है तो बूढ़ा पर बीसोंघाव शरीर पर लिए आपके स्वागत के लिए तैयार है तांगे में एक इंच जगह नहीं है पर थोड़ी कसरत के बाद थोड़ा चल पड़ता है आप काशी में प्रवेश करते हैं यहाँ सभी चीजें इतनी मँहगी हैं - इसलिए देवगण ने मनुष्य के पेट भरने का बड़ा अच्छा और सस्ता प्रबंध करके अपनी उदारता का परिचय

मर्यादा श्रावण - 1921 (1979 संवत्) पृ0 253

दिया जब तक आप अपने ठिकाने पहुँचे तब तक आपका पेट गर्द शिव-शिव पवित्र रज से भर जाता है ।

यदि आप वृद्ध हों और काशी में देह त्यागकर मुक्त होना चाहते हैं तो इस उद्देश्य की आशुसिद्ध के प्रर्याप्त साधन हैं आपके द्वार पर कूड़ा हफ्तों तक न हटाया जायेगा -- यदि इस पर भी आपको क्षय रोग या हैजा न हो तो म्युनिसपैलिटी का क्या दोष है अपनी तरफ से उसने आपकी स्वर्गयात्रा की प्रगति को तेज करने का पूरा प्रयत्न कर दिया ! 18 नवम्बर के लीडर में श्री रेब्लर से प्रकाशित !

इसी तरह "हँसी " पर एक लेख छपा इसमें हँसने के लाभ का वर्णन है --" मुहम्मद औरंगजेब आदि पर " मर्यादा" में कई लेख छपे । ऐसे लेखों को छापना और उसे प्रोत्साहन देना " मर्यादा " के मुख्य उद्देश्यों में था बनारसी दास द्वारा लिखित " औरंगजेब के जीवन पर एक दृष्टि छपा " इसमें औरंगजेब के जीवन और उसकी नीतियों का वर्णन था -बनारसी दास ने उसके जीवन के बारे में लिखा --" जिसने हिन्दू समाज के चन्द्र का राहु के समान ग्रस्त कर लिया - जो कंटकाकीर्ण पथ पर दौड़ता ही चला गया ठोकरें खाने, बहुत हानि उठाने पर भी जिसने अपने मार्ग का त्याग न किया । जिसने न रदन्तयुक्त केसरी बँग करना चाहा जिसने हरचे वादा बादमाकश्ती दराब अंदोखतेम यह कह कर अपनी नौका समुद्र में छोड़ दी और मार्ग के अवरोधों की उपेक्षा करता हुआ निज मतानुसार उसे खेता ही चला गया किन्तु नौका अथाह जल वर्षा के कारण नष्ट हो गयी वह कौन था ? वह था वही

महीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब आलमगीर और वही हमारे चरित्र का नायक है । हम लोग उसे धर्म अत्याचारी कहकर बुरे रूप में याद करते हैं परन्तु उसमें बहुत गुण थे उन गुणों से हमें शिक्षा लेनी चाहिये और निष्पक्ष भाव से उसकी प्रशंसा भी करनी चाहिये गुण दोषों का उल्लेख करना समालोचक का धर्म है – ओलिवर क्रामवेल ने एक बार कहा था –" जैसा मैं हूँ मुझे वैसे ही चित्रित करो यदि मेरे चेहरे का एक भी दाग या झुर्रियाँ तुमने छोड़ दी तो एक दमड़ी भी मैं तुम्हें नहीं दूँगा ।" * अस्तु यहाँ भी इस नीति का पालन करना होगा । उसने हिन्दुओं पर जजिया फिर से लगाया जिसे अकबर ने बंद करवा दिया था । औरंगजेब के धर्म की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है बलखले युद्ध में जब शत्रु गण टिड्डी दल के समान चारो ओर से आक्रमण कर रहे थे, ... औरंगजेब घोड़े से उतर कर नमाज पढ़ी थी । वह धर्म को कभी नहीं छोड़ता था और प्रत्युत्पन्नमति था ।[1]

इसी तरह इसी श्रृंखला की अलग कड़ी के अर्न्तगत श्रीयुत नारायण प्रसाद अरोड़ा द्वारा लिखित " मुहम्मद के चरित्र पर दृष्टि " भी छपा

जनम 579 – मृत्यु 632

मुहम्मद अरब का विजयी मक्का का उपदेशक और एक महान विप्लव कर्ता था बड़ा विचारशील और पवित्र प्रकृतिका पुरूष था तृष्णालालच से बचने हुए 48 वर्ष तक सादगी पूर्वक जीवन व्यतीत किया । यहूदियों ईसाईयों से

---

* " PAINT ME AS I am if you will leave out the scars and wrinkles, I will not pay you a shilling

1· मर्यादा – भाग 4, पृ0 168

बात करने के बाद वह मूर्ति पूजा को घृणा की दृष्टि से देखने लगा। सांस्कृतिक भोग विलास में उसे केवल दो चीजें प्रिय थी एक तो स्त्रियां दूसरे सुगंध और इन दोनों की उसके धर्म में कोई मनाही न थी अरब के लोगों को कुरान के धार्मिक नियमों ने उन्हें बहुत कुछ मर्यादा के भीतर रहने पर बाध्य कर दिया बेशुमार विवाह करते थे वहां चार विवाह करने की आज्ञा रह गयी। घरेलू जीवन में मुहम्मद में भी साधारण मनुष्यों की सी वासनाएं थी और वह देवदूत के अधिकारों का दुरुपयोग करता था।"[1]

विज्ञान से सम्बंधित जानकारियां भी " मर्यादा " में छपती रहती थी श्रीमती क्यूरी - लेखक पारस नाथ त्रिपाठी

" याव साक्षरा माता, तावत्त प्रबाल बलिका
निरक्षता हिनिष्ठन्ति सत्य यक्ष रातैरवि ।।

पाठक गण हमारे देश में स्त्रियां हीन दशा में है और लोगों के मन की सम्पूर्ण शक्तियों को विकसित करने के निमित्त उपयोगी शिक्षाओं की अवस्था जिस प्रकार सोचनीय है उससे यही अनुमान होता है कि स्त्रियों के द्वारा कोई कार्य फलीभूत नहीं हो सकता। पाठकगण लेखनी में शक्ति नहीं कि अपने देश की महिलाओं के कष्टों को पूर्ण रूप से कह सके इस लेख में विदुषी महिला की जीवन को पढ़कर आप लोग समझ सकते हैं कि स्त्रियां क्या नहीं कर सकती ?

----

1. मर्यादा भाग 6, पृ0 5

श्रीमती क्यूरी क्यूरीविश्वविद्यालय की सेवा कर उन बच्चों व श्वसुर की सेवा करके अपनी जिन्दगी को धन्य मानती थी -- वह पूरे दिन पति के साथ प्रयोगशाला में काम करती थी । "मर्यादा" में मैडम क्यूरी पर लेख हो " क्या यह सत्य है " शीर्षक से छपे लेख हो इनका एक ही उद्देश्य बार-बार दोहराया गया कि यूरोप में जो उन्नति हुई है उसका एक मुख्य कारण कि वह देश अपने यहां स्त्रियों को सम्मान और शिक्षा देता है । इसी की अगली कड़ी के रूप में एक अन्य सम्पादकीय टिप्पणी --" बिलायती अबलाओं का बल " इस महायुद्ध के आरम्भ होने के पहले विलायत में भी कई ऐसे लोग थे जिनका विश्वास था कि स्त्रियां सब काम में भाग क्यों नहीं ले सकती इस समय इंग्लैण्ड में साढ़े सात लाख औरतें काम कर रही हैं इसका यह अर्थ है कि औरतों में साठ लाख सिपाही लड़ने के लिए भेजे हैं तीन साल में 6,21,000 औरतें शस्त्र बनाने के काम में भरती हुई हैं ।

महिलाओं ने पुरूषों से कम वेतन के खिलाफ संघर्ष किया और हड़ताल सफल हुई ।" इस प्रकार के लेख उस समय महिलाओं में आत्मविश्वास लाने के लिए महत्वपूर्ण हैं " मर्यादा " ने महिलाओं की जागृति के लिए लगातार इस तरह के लेख छापे और पुरातन पंथियों की भी समय-समय पर फटकार सुनाई । "1911 में सम्पादकीय टिप्पणी छपी - हवाई जहाज कोई सप्ताह खाली नहीं जाता जिसमें यह न सुनाई दे कि अमुक अंगरेज हवाई जहाज से गिरकर मर गया । हमारे हिन्दुस्तानी सोचते होंगे मूर्ख है जो अनमोल जीवन को जहाज पर चढ़कर खोते हैं लेकिन वही जाति उन्नति की दौड़ में सबसे आगे

रह सकती है जिस जाति वाले कर्तव्य को पूरा करने में मौत से नहीं डरते।"[1] यहां लेखक का उद्देश्य भारतीयों के पिछड़ेपन की मानसिकता की ओर संकेत करना है कि वह प्रगति का पथ नहीं अपनाना चाहते और उसके लिए हमारे देशवासी कोई जोखिम नहीं लेना चाहते दूसरी तरफ अंग्रेज यदि दिनोंदिन उन्नति करते जाते हैं उसका एक मात्र कारण उनका साहस है,[2]

इसलिए वह कहते हैं कि - "धन्यवीर जाति धन्य तुम्हारा साहस और धन्य तुम्हारी जाति सेवा । "मर्यादा" में समय-समय पर वैज्ञानिक प्रगति और नई खोजों के बारे में छपता रहता था अधिकतर टिप्पणियां सम्पादकीय में होती थी -" 1911 में ही अद्भुत कैमरा -" के बारे में छपा था । इस कैमरे की खासियत थी पहाड़ या चोटी पर रख दिया जाय तो वह चारों ओर के दृश्य इसमें अंकित हो जाय यह जापान की कारीगरी का नतीजा है।"[3]

केले के कपड़े का आविष्कार कनाडा में आदि इस तरह की ज्ञान विज्ञान से भूरपूर जानकारियां रहती थी " मर्यादा" में । इसी तरह की लेखों में एक और लेख छपा -" मनुष्य उत्पत्ति" इस लेख को राधाचरण गोस्वामी " ने लिखा - चार्ल्स डारविन का नाम सब जानते हैं । कुछ मानते हैं कि डार्विन के नियमानुसार मनुष्यों की बंदरों से उत्पत्ति है किन्तु वास्तव में डार्विन ने यह नहीं किया, इसका प्रतिवाद ही किया है.... डार्विन ने मनुष्य की गठन प्रणाली संस्कार व्यवहार मानसिक अभिव्यक्ति भ्रूणा की अवस्था और विकास अविकसित और निष्प्रयोजन इंद्रिय पेशी प्रवृत्ति के

----

1. 1911 मर्यादा सम्पादकीय पृ0
2. सम्पादकीय टिप्पणियां - 1911
3. वही

आविर्भाव इत्यादि नाना विषयों की प्रख्यालोचन कर मनुष्य की जैसी वंशावली स्थिर की है ....।"

मर्यादा की समकालीन लगभग सारी हिन्दी पत्र पत्रिकाओं का मुख्य उद्देश्य लोगों में फैली अज्ञानता को दूर करके ज्ञान का संचार करना था । इसी क्रम में श्री राधाचरण गोस्वामी का एक अत्यंत महत्वपूर्ण लेख -"मनुष्य की उत्पत्ति" नाम से छपा इस लेख में उन्होंने डार्विन के विकासकारी सिद्धांत के बारे में फैले भ्रम का निराकरण किया है । उन्होंने इस लेख के हवाले से यह बताया है कि मनुष्य का विकास बंदर या लंगूर से नहीं है उन्होंने इसका प्रतिवाद ही किया है उन्होंने इस बात को भी रेखांकित किया है कि डार्विन ने कभी भी अपने सिद्धांत में यह नहीं कहा कि मनुष्य का पूर्वज बंदर था डार्विन ने मनुष्य की गठन प्रणाली इन्द्रिय पेशी प्रवृत्ति के आविर्भाव इत्यादि नाना विषयों की प्रख्यालोचन कर मनुष्य की जैसी वंशावली स्थिर की है । भारत में कुछ लोग यह प्रमाणित करने लगे थे कि विकासवाद का यह सिद्धान्त तो हमारे यहाँ मौजूद है उदाहरण के तौर पर मतस्य अवतार से होते हुए नरसिंह अवतार । लेकिन ईसाई धर्म और मुस्लिम धर्म में तो अवतारवाद है ही नहीं खुदा ने सृष्टि जिस रूप में बनाई है उसी रूप में वह है सबको खुदा ने अलग-अलग बनाया है उसक विकासवाद से कोई सम्बंध नहीं है विकासवाद को लेकर अकबर इलाहबादी का यह व्यंग्य रोचक तो है ही साथ ही विकासवाद को लेकर उसका व्यंग्य स्पष्ट है -- डार्विन साहब हकीकत से निहायत दूर थे मैं न मानूंगा कि भूरे साहब के लंगूर थे । " इस तरह की मान्यताओं से टकराते हुए राधाचरण गोस्वामी ने अत्यंत तार्किक ढंग से इन भ्रमों को दूर किया है ।

इसी तरह वनस्पति विज्ञान से सम्बंधित एक और लेख छपा "भ्रमर और पुष्प सौन्दर्य[1] "- फूल में इतना सौन्दर्य क्यों ? ऐसा वर्ण वैचित्र्य क्यों ? मनुष्य फूलों का इतना आदर इसलिए करता है कि वह उनका सौन्दर्य भोगकर सके । इसीलिए वह यत्नशील होकर उसे घर में लगाता है किन्तु फूल निर्जन वन में भी खिलते हैं ।

फूलों की उत्पत्ति फूलों में स्त्री पुरुष होते हैं भिन्न-भिन्न प्रकार के फूलों का वर्णन - पराग केशर पुष्पसंज्ञक और गर्भ केशर स्त्री संज्ञक है । डार्विन का मत था कि भ्रमर फूलों के उज्ज्वल वर्ण से प्रभावित होकर उन पर बैठता है और मधुपान करते समय उसकी देह से पराग लग जाता है और वह जब दूसरे गर्भ केशर वाले पुष्प पर बैठता है उसके शरीर से पराग छूट कर गर्भ संचार करता है और फूल से उड़ते समय वही भ्रमर इसका पराग अपने साथ ले जाता है । भौरे मधु से आकर्षित होकर पौधे पर आते हैं सौन्दर्य से मोहित होकर नहीं इसे सिद्ध किया प्लेटो ने । "

इसी तरह " रंग रसायन " नाम से एक और लेख छपा जिसमें रंगों का हमारी आदतों पर क्या प्रभाव पड़ता है शरीर रंगों से किस तरह प्रभावित होते हैं ---" देश के किसी - किसी भाग में मित्र अथवा सम्बंधी की मृत्यु के समय " शोक चिन्ह स्वरूप " लोग कभी - कभी काले वस्त्र धारण करते हैं शोक प्रभाव मस्तिष्क पर ही विशेष पड़ता है और अग्नितत्व शांत

---

1. मर्यादा -1912 जून, लेखक कुवंर महेन्द्र पाल सिंह ।
   मर्यादा - भाग । संख्या 8 पृ0 30

हो जाता है और मस्तिष्क खराब होने का भय नहीं रहता ।" ....
" चेचक के रोगी के पास नीम के पत्ते रखने की सर्वत्र चाल-चलन है चेचक एक प्रकार का विस्फोटक है और विस्फोटक में नीम के पत्तों का रंग लाभदायक होता है " इस तरह " मर्यादा" सही अर्थों में ज्ञान राशि का संचित कोश थी उसने रंगों, मनुष्य की उत्पत्ति, विध्वंस हवाई जहाज और अन्य वैज्ञानिक प्रगति पर लेख साहित्य के हर रंग की चर्चा की ।

1919 में "हमारी शिक्षा प्रणाली में त्रुटियाँ" नाम से एक लेख छपा, जिसके लेखक थे मोहनदास करमचन्द गाँधी, लेख को पढ़ने पर गांधी जी के स्त्री सम्बन्धी विचारों में विरोधाभास प्रतीत होता है एक तरफ वे चाहते थे कि स्त्रियाँ आत्मनिर्भर बने वहीं दूसरी तरफ वे घर से बाहर निकल कर टाईपिष्ट बने यह उन्हें तर्कसंगत नहीं लगता।

ऐसे महत्त्वपूर्ण लेख का सम्पूर्ण गांधी वाड.मय[⊗] में नहीं पाया जाना आश्चर्यजनक प्रतीत होता है ।

सम्पूर्ण - गांधी वाड.मय" खण्ड 15, अगस्त 1918- जुलाई 1919

खण्ड 16, अगस्त 1919- जनवरी 1920

प्रकाशन विभाग,

सूचना और प्रसारण मंत्रालय

भारत सरकार, 1965

TH-5688

उपसंहार

"मर्यादा" में प्रतिबिम्बित सामाजिक राजनीतिक चेतना आधुनिकीकरण से बदले समाज की देन है यह चेतना समाज में व्याप्त मध्यकालीन रूढ़ियों एवं मान्यताओं को बदलने का प्रयत्न है इस समय नवशिक्षित वर्ग अपने ही समाज की परम्पराओं एवं पुरातनता से संघर्ष कर रहा था । उस संघर्ष में उसे अपनी अस्मिता को बचाते हुए विदेशी शासनके चंगुल से अपने को छुड़ा लेने की छटपटाहट है, अपने समाज को जागृति के पथ पर लाना संकीर्णता के दायरे से निकल कर उन्नत मानवीय जीवन जीने को प्रेरित करने की बेचैनी है।

नवशिक्षित वर्ग अपने समाज को यूरोप के समक्ष रखकर तुलना करने लगा - और यहाँ कहीं-कहीं अपने को श्रेष्ठ ठहराने की भावना भी दिखती है यह श्रेष्ठता कहीं-कहीं सांस्कृतिक हीनता ग्रंथि का रूप ले लेती है लेकिन यह अंग्रेजों की उस भावना की उपज है जहाँ वे भारतीय को असभ्य-जंगली ठहरा रहे थे । 'मर्यादा' ने एक संतुलित दृष्टिकोण से उस समय की सारी समस्याओं को देखा और समझा और उनका हल नए और प्रगतिशील दृष्टिकोण से दिया उसने समाज में व्याप्त राजनीतिक अज्ञानता अशिक्षा और रूढ़ियों जैसी समस्याओं पर न सिर्फ लिखा बल्कि उन समस्याओं की जड़ में जाकर उसे दूर करने का प्रयत्न भी किया ।

'मर्यादा' ने उस समय के सबसे ज्वलंत प्रश्न भारत की पराधीनता और स्वराज्य का महत्व पर न सिर्फ बहस के लिए एक मंच प्रदान किया बल्कि किसी

भी देश की उन्नति में स्वराज्य का क्या महत्व है उसे रेखांकित किया क्योंकि यह सिर्फ एक साहित्यिक पत्रिका ही नहीं वरन अपने सरोकारों के कारण साहित्य की एक निधि न होकर इतिहास की एक धरोहर है। इस समय राजनीतिक साहित्यिक विधाओं में लिखे जाते थे यह एक दम सही है ।

'मर्यादा' अपने सरोकारों को लेकर स्पष्ट है वह हिन्दू जाति का उत्थान चाहती है लेकिन इसके लिए वह यह नहीं कहती कि हम श्रेष्ठ हैं - वह श्रेष्ठ बनाने के लिए प्रयत्नशील है समाज में व्याप्त - बाल विवाह अछूत समस्या, अनमेल विवाह गोरों का भारतीयों पर अत्याचार, अशिक्षा आदि सभी पर रोष है वह एक तरफ मैनूसिपलटी में मुसलमानों की अधिक संख्या को लेकर चिंचित है तो दूसरी ओर उसे यह भी चिंता है कि किस तरह साम्प्रदायिक दंगे बंद हों साथ ही उसका यह निदान भी देती है कि यदि मौलवी साहब सुबह उठ कर पूजा करें और पंडित जी मक्का की ओर मुँह करके अजान दें तो समस्यायें निपट जायें । आज के समय कुछ लोगों को समस्या का यह हल अति सरलीकरण लग सकता है परन्तु यहाँ लेखक का उद्देश्य स्पष्ट है कि यदि हम एक दूसरे की धार्मिक भावनाओं को आस्थाओं को समझ लें तो विवाद नहीं रह जायेगा । यह 1920 में "मर्यादा" का एक लेखक लिख रहा है इससे "मर्यादा" का सरोकार स्पष्ट है ।

महिलाओं के अधिकारों को लेकर उमा देवी का दो टूक प्रश्न कि यदि स्त्रियों को यह अधिकार उनके अनपढ़ अज्ञानी होने के कारण नहीं मिल

सकता क्या यह अधिकार सिर्फ उन पुरुषों को मिलेगा जो शिक्षित हैं यदि ऐसा नहीं तो स्त्रियों को ही इस अधिकार से क्यों वंचित रखा जाय - यहाँ यह बात और भी ज्यादा महत्वपूर्ण है कि भारत में स्त्रियों के वोट के अधिकार को लेकर बहस, और स्त्रियों को यह अधिकार ब्रिटेन की स्त्रियों से पहले मिला । उसमें कांग्रेस की तरफ झुकाव है तो वह स्पष्ट तो है ही साथ कांग्रेस उस समय अन्तर्विरोधों के बाद भी महत्वपूर्ण और जनप्रिय नेताओं और कार्यकर्ताओं की पार्टी थी । सम्भवत: महात्मा गाँधी सरीखे नेताओं का उसमें होना उसके झुकाव का मुख्य कारण था नीति तो स्पष्ट थी ही ।

1

1979 सत्याग्रह, असहयोग और स्वराज -{एक आलोचना}-गोकुल चन्द्र प्रसाद

1979 भारत की बर्बादी और निमक का टैक्स -गोपीवल्लभ शालग्राम उपाध्याय

1916 स्वराज्य {नवम्बर

स्वराज्य की योग्यता - दिसम्बर

स्वदेश के लिए सात सहस्र वीर भारतवासियों -प० कृष्ण बिहारी मिश्र

जनवरी 1914 - भारतीय राष्ट्र निर्माता - रामशरण उपाध्याय

जुलाई 1916 - स्वराज्य की आवश्यकता - दास

अक्टूबर 1916 -भारत का वर्तमान और भविष्य - कृष्ण सीताराम

2

नवम्बर - 1916 स्वराज्य

स्वराज्य की योग्यता - कृष्ण देव प्रसाद गौड

दिसम्बर -1916 भारतीय स्वराज्य

स्वराज्य - एक महिला

जुलाई सन् 1917 - स्वराज्य के लिए आंदोलन -प० बालगंगाधर तिलक

होमरूल और राजकोष

प्रजातन्त्रता

भारतीय स्वराज्य

स्वराज्य या होमरूल अपना

देशभक्ति की राहत

अगस्त 1917

होमरूल के तीन कारण - विपिन चंद्र पाल

कौन कहता है भारत स्वराज्य के योग्य नहीं - एक उदार अमेरिकन

स्वदेश का राग

कांग्रेस के इतिहास पर एक दृष्टि

स्वायत्तशासन की योग्यता - रामानन्द चटर्जी

जून 1918

स्थानिक स्वराज्य की उन्नति

शिक्षा पर

3

स्वामी विवेकानन्द श्रावण 1922

श्री लायड जार्ज की आयरिश नीति - भाद्रपद 1922

डा० वाल्अर रायेनाउ - आश्विन 1922

थियोसोफिकल सोसायटी - अमरनाथ सिंह आश्विन 1922

दशमसंयुक्त प्रान्तीय कान्फ्रेन्स

4

महात्मा गांधी

श्रीमान गांधी का व्याख्यान - मार्च सन 1918

महात्मागांधी की जीवनी पर एक दृष्टि -सत्यकथा मई 1918

अहिंसा परमोधर्म: लालालाजपत राय - अगस्त 1916

सुधार योजना पर श्री गांधी - जुलाई सन् 1918

एक तुलना महात्मा गांधी और तिलक - नवम्बर 1918

5

स्त्री

जापान महिला महाविद्यालय जुलाई 1916

विलायती अब लाओ का बल 1918 नवम्बर

भारतीय महिला समाज - श्रीमती ऐनी बेसेन्ट - 1918

महारानी लक्ष्मी बाई - मार्च 1919

6

स्त्री विशेषांक - फरवरी 1914

मुगलो के राजस्व काल में स्त्री शिक्षा - जुलाई 1919

क्या यह सत्य है - मई 1911

अन्य विषयों पर महत्वपूर्ण लेख -

कालीदास का समय - कृष्ण बिहारी मिश्र

हार की जीत - प्रेमचंद की कहानियाँ

त्यागी कांग्रेस - कार्तिक 1979, 22

प्राचीनो ने सप्तभार्विक के चार मान रहे मार्गशी से 1922

आधार ग्रंथ

हिन्दी पुस्तकें :

मर्यादा - 1910 नवम्बर से 1923 (पैत)

1910 से 1921 जून अभ्युदय प्रेस प्रयाग

1921 जुलाई से 1923 तक ज्ञान मंडल काशी

सहायक ग्रंथ :-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा - वाराणसी, संवत् 2045

नामवर सिंह - दूसरी परम्परा की खोज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1983

पुरूषोत्तम अग्रवाल - संस्कृति वर्चस्व और प्रतिरोध, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 1995

बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक राधाकृष्ण नई दिल्ली -1989

महामहोपाध्याय गोरी शंकर ओझा - मध्यकालीन भारतीय संस्कृति (600 ई॰ से 1200 ई॰)

महात्मा जोतिबा फुले - भारतीय समाज क्रांति के जनक

डा॰ मुरलीधर वंशी लाल राहा, राधाकृष्ण, नई दिल्ली 1992

महादेवी वर्मा - श्रृंखला की कड़ियाँ- भारती भंडार सातवाँ संस्करण, प्रयाग

सं० राजकिशोर - हरिजन से दलित/स्त्री के लिए जगर - वाणी प्रकाशन 1994

रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद- 1991

रामविलास शर्मा - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1984

रामविलास शर्मा-महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण 1977

सं० रामेश्वर भट्ट - मनु स्मृति

रविन्द्र नाथ टैगोर - गोरा, साहित्य अकादमी, 1984

वीर भारत तलवार - राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य हिमाचल पुस्तक भंडार, नई दिल्ली

सुमित सरकार - आधुनिक भारत 1885, राजकमल प्रकाशन, पटना 1992

स्वामी विवेका नन्द - भारतीय नारी, रामकृष्ण मठ नागपुर

हजारी प्रसाद द्विवेदी - हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन - नई दिल्ली 1988

स० हेमन्त शर्मा - भारतेन्दु समग्र, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना हिन्दी हिन्दी प्रचारक संस्थान, 1981

अंग्रेजी पुस्तकें :

सुधीर चंद्र - " दि ओप्प्रेसिव प्रजेन्ट , आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1992

ज्ञानेन्द्र पांडे - " द कन्स्ट्रक्शन आँफ कम्युनलिज्म इन कोलोनियल नार्थ ईंडिया आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस - 1990

राजमोहन गाँधी - अण्डरस्टैण्डिंग दि मुस्लिम माइन्ण्ड पेंग्विन 1988

पत्र-पत्रिका :

आलोचना - 86 वा अंक - सं० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन

हंस - राजेन्द्र यादव , औरत उत्तर कथा " 94

इन्द्रप्रस्थ भारती - सं० विजयमोहन सिंह , हिन्दी अकादमी

शोध ग्रंथ - प्रज्ञा पाठक - बीसवीं शदी के उत्तरार्द्ध में स्त्री चेतना और बालाबोधिनी, अप्रकाशित लघु शोध ग्रंथ, जे०एन०यू०